प्रकाश-पुस्तक-माला

लेखक

'कर्म्मवीर' सम्पादक

पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी

प्रकाशक

वैद्य शिवनारायण मिश्र, भिषग्रत्न.

प्रकाश पुस्तकालय,

कानपुर

सातवाँ संस्करण]

[मूल्य १२ आने]

नाटक के पात्र ।

(पुरुष)

सूत्रधार ।

गालव—ऋषि ।

शंख, शशि — गालव ऋषि के शिष्य ।

चित्रसेन—इन्द्रकी सभाका गंधर्व ।

नारद—मुनि ।

श्रीकृष्ण—अर्जुन के मित्र ।

बलराम—कृष्ण के बड़े भाई ।

सात्यकि—कृष्ण का सारथी ।

ऊधो—कृष्ण का मित्र ।

इन्द्र—देवलोक का राजा ।

बृहस्पति, अग्नि, वरुण, कुवेर, चन्द्र, यमराज — इन्द्र की सभा के सभासद ।

अर्जुन—पाण्डव, श्रीकृष्णका मित्र ।

भीम, सहदेव — अर्जुन के भाई ।

शंकर—कैलाश-वासी महादेव ।

ब्रह्मा—सृष्टि-कर्ता ।

दास, किन्नर, सभासद, शंकर के गण आदि ।

(स्त्री)

नटी ।

चित्रांगी—चित्रसेन गंधर्वकी स्त्री ।

प्रेमलता—चित्रांगी की सखी ।

द्रौपदी—पाण्डव की स्त्री ।

सुभद्रा—अर्जुन की स्त्री, श्रीकृष्ण की बहिन ।

पार्वती—शंकर की स्त्री ।

सरस्वती—ब्रह्मा की कन्या ।

सावित्री—सरस्वती की माता ।

दासी, किन्नरियां, सखी आदि ।

प्रकाश पुस्तकालय कानपुर द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

- आयुर्वेदीयखनिजविज्ञान ३)
- विष-विज्ञान (सजिल्द) २।।)
- परिभाषा प्रबोध १।)
- भारतीय शल्य-शास्त्र १)
- आरोग्य-सूत्रावली ।=)
- जल-चिकित्सा (सचित्र) =)
- जलके प्रयोग व चिकित्सा ।।)
- सूर्य-व्यायाम (सचित्र) ।)
- उषःपान ।-)
- रुबाइयात उमर खय्याम ३)
- राष्ट्रीय-वीणा भाग १ ।।=)
- ,, भाग २ ।।)
- त्रिशूल-तरङ्ग (सनेही) ।।=)
- सती-सारन्धा, सचित्र ।।=)
- कृषक-क्रन्दन (सनेही) ≡)
- कुसुमाञ्जलि (,,) =)
- हिन्दी-करीमा (सेहर) ।-)
- महाराज नन्दकुमार को फाँसी (ऐ० उप०) २।।)
- वज्राघात ,, २।।)
- बलिदान (सचित्र),, २)
- काला पहाड़ ,, ,, ।।।)
- घर और बाहर (रवीन्द्र) १।)
- गोरा, उप० (रवीन्द्रठाकुर) ३)
- जर्मनजासूस की रामकहानी ।-)
- युद्ध की कहानियाँ ।)
- हिन्दीगीताञ्जलि रवीन्द्र १।।)
- मेघनादबध (माइकेल) ।।।)
- विप्लवइच्छा (गद्यगीत) ।-)
- श्रीकृष्ण चरित ।=)
- कृष्णार्जुनयुद्ध नाटक ।।=)
- भीष्म नाटक ।।)
- मुक्तधारानाटक (रवींद्र) ।।=)
- सम्राट् अशोक (सचि०) १)
- चेतसिंहकाशीकाविद्रोह ।=)
- छत्रपति शिवाजी सचि १।।=)
- महाराणा प्रताप ,, ।=)
- देवीजोन स्वतं०कामूर्ति ।=)
- क्रान्तिकारी राजकुमार १।)
- रूस का राहु [illegible] ।=)
- उद्योगी पुरुष ।=)
- सरोजिनी नायडू ।=)
- दादाभाई नौरोजी =)
- रानाडे की जीवनी =)
- भगवान बुद्धदेव, सचित्र १।।)
- संसारकी असभ्य जातियों की स्त्रियाँ (१०५चित्र) २।।)
- वन्देमातरम् चित्राधार २)
- कांग्रेस-चित्रावली ।।।)
- तिलक-चित्रावली १)
- व्यङ्ग-चित्रावली, सजि० १।।)
- हिन्दी-मराठी-शिक्षक १)
- शिक्षा-सुधार ।।=)
- सितार-शिक्षक, सचित्र ।=)
- बाल-धर्म-शिक्षक ।)
- राजयोग (विवेकानन्द) ।=)
- भक्तियोग ,, ।=)
- रूसकी राज्यक्रांति सचि० २)
- चीन की राज्यक्रांति १।।)
- भारतीय इतिहास में स्वराज्यकी गूंज ।=)
- आयर्लैंड में होमरूल ।।)
- आयर्लैंड में मातृभाषा ।=)
- भारतीय सम्पत्तिशास्त्र ४)
- साम्यवाद (पालीवाल) ।=)
- टाल्स्टायके सिद्धांत १।)
- फिजी में भारतीय प्रतिज्ञा-बद्ध कुलीप्रथा, सजि० १)
- फिजी द्वीपमें मेरे २१वर्ष ।।)
- मेरे जेल के अनुभव ।=)
- एशिया निवासियोंके प्रति यूरोपियनोंका बर्ताव ।=)
- हमारा भीषण ह्रास ।)
- वहिष्कृत भारत ।)
- अकालीदर्शन (सचित्र) ।।।)
- भारतके देशी राष्ट्र १)
- राजनीति प्रवेशिका ।=)
- काँग्रेस का इतिहास ।।-)
- बीसवींसदीका महाभा० ।।।)
- चम्पारनकी जाँच रिपोर्ट ।-)

निवेदन ।

हम जिस पुस्तक को हिन्दी संसार के सामने रख रहे हैं, वह अपने जन्म के पहिले ही बहुत ख्याति प्राप्त कर चुकी है। जबलपुर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन अपने ढङ्ग का अच्छा सम्मेलन था, और उसकी अच्छाई खँडवा के मित्रों के काम से और भी बढ़ गई थी। जबलपुर-सम्मेलन की बड़ी खूबियों में से इस खूबी का विशेष स्थान है कि खँडवा के मित्रों ने एक ऐसा नाटक खेला जिसको सभी दर्शकों ने, जिनमें देश के चारों कोने से आने वाले साहित्य-सेवियों की एक बड़ी संख्या थी, मुक्त-कण्ठ से सराहा था और अनुरोध करके उसे फिर दूसरे दिन खिलवाया था। लोगों का मन हर लेने वाला वह नाटक 'कृष्णार्जुन-युद्ध' ही था। इसके भावों की उच्चता और गहराई, इसकी भाषा की निर्मलता और ओज ने सभी को मुग्ध कर लिया था और कितने ही मर्मज्ञ मित्रों ने उसके खेले जाने के पहिले ही दिन उसे साहित्य की 'एक चीज़' के नाम से पुकारा था और उसके लेखक के दर्शन करने की उत्कट इच्छा प्रकट की थी। दूसरे दिन, उस समय लोगों के आश्चर्य और हर्ष का ठिकाना न रहा, जब उन्होंने रङ्ग-मञ्च पर जबरदस्ती खींचखाँच कर उपस्थित किये जाने वाले खँडवा नगर के अत्यन्त उद्योगी और नम्र कर्म्मवीर, मध्य-प्रदेश की 'प्रभा' के संयुक्त सम्पादक,

श्रीयुत् माखनलाल जी चतुर्वेदी को इस नाटक के लेखक के रूप में खड़ा पाया। दर्शकों ने उस समय अनेक प्रकार से चतुर्वेदी जी का बड़ा सम्मान किया, और इस प्रकार इस नाटक तथा इसके भावों का और भी आदर किया। नाटक के लेखक श्रीयुत् माखनलाल इससे भी बढ़कर आदर के पात्र हैं। वे विश्व की उन शान्त आत्माओं में से एक हैं जो सेवा और कर्मण्यता के भावों से भीतर ही भीतर सुलगा करती हैं, और विना किसी प्रकार के प्रदर्शन के गहरी शान्ति के साथ, परिस्थिति में कार्य्य के अनुकूल परिवर्तन उत्पन्न कर देती हैं। जो स्थल उनके संसर्ग में आया, उसी में ऐसा परिवर्तन हुआ। उनका नगर उनके कारण कुछ का कुछ हो गया। उनकी 'प्रभा' उनकी आत्मा का परिचय-स्वरूपा थी। साहित्य-क्षेत्र में 'भारतीय आत्मा' के नाम से 'प्रताप', 'विद्यार्थी' आदि पत्रों में उन्होंने जब कभी जो कुछ भी लिखा, यद्यपि, देखने में वह थोड़ा ही है, परन्तु, गुण और व्यापकता में अत्यन्त ऊँचा, गहरा और विस्तृत है। ऐसी पुस्तक और ऐसे कर्म्मवीर को हिन्दी संसार के सामने लाने में आज हमें जो गहरी प्रसन्नता हो रही है, उसी में पाठकों को भाग लेने का निमन्त्रण देते हुये हम इस निवेदन को समाप्त करते हैं।

कानपुर,
प्रताप कार्य्यालय,
कार्तिकी पौर्णिमा
सं० १९७५ वि०

शिवनारायण मिश्र, वैद्य।

प्रस्तावना

स्थान—सूत्रधार के गृह का देवालय।

(नटी तथा नाटक के सब पात्र देव–स्तुति करते हैं।)

गायन।

जय जय जय अखिलेश।

कलमय, बलमय, छलमय, करुणा–कर, करुणेश ॥ जय० ॥

मुरलीधर, गोपाल, विहारी,

गिरिवरधर, माधव, असुरारी,

जयति मुरारी, जयति खरारी, जय जय जय केशी कंसारी।

हां, नीति निवेश, भारत–रंगभूमि के नटवर, धृत बहुवेश ॥

जय जय० ॥

भारत-लक्ष्मी द्रुपद-सुता क्यों—

दु:शासन से दु:खित हो यों ?

जन जानी, करुणा की ठानी, साड़ी घटी न, खींची तानी।
त्यों ही देवेश, बढ़कर दृढ़तर भुजा उठे, कट जायँ कलेश ॥
जय जय० ॥

हो जगतीतल में न निराशा,
पूरी हो प्यारी अभिलाषा,
भावप्रकाशा, भेद विनाशा, हो बस एक राष्ट्र की भाषा ;
हो दृढ़ उद्देश, जिस पर हों हम सब चाहे निःशेष ।
भूलो न रमेश, जन्म कर्म की भूमि तुम्हारी भारत देश ॥
जय जय० ॥

(देव को प्रणाम कर सब जाते हैं, केवल नटी रह जाता है)

नटी—वे आनेवाले हैं। और, यह तार कहता है (चोली से तार निकालती है) अभी ही। उनको गये बहुत दिवस हुए, किन्तु वह समय आज कितना अल्प दीखता है । उन के वियोग के आँसू अभी भी मेरे नेत्रों में, (आँखों पर उँगलियाँ लगाती है) गीले मालूम होते हैं, और प्रस्थान-समय का चुम्बन मेरे अधर पर अभी भी धरा सा मालूम होता है। (अपने मुख पर हथेली लगाकर चूमती है) और यह हृदय—वे जारहे हैं, इस विचार से, धड़कता दीखता है । (हृदय पर हाथ रखती है) ऐसा विदित होता है मानों वे कल ही गये हों। किन्तु, मैं ऐसा समझ कर चुप नहीं रहूँगी । मैंने उन्हें जाने दिया था—केवल कुम्भ-मेले में स्वयंसेवा के लिए । महाराज वहाँ से हिमालय की ओर चल दिये । ऐसे कई अभियोग हैं; मैं रूठूँगी, न मानूंगी। किन्तु हृदय,

तुझे मेरी शपथ है, जरा चुप रह । मान-मनौअल का नाटक तो होता ही रहेगा; आज उन्हें इस रंग-मंच पर कुछ और ही दिखाऊँगी । वे नाटक-प्रिय हैं—देखें; अच्छा तो नाथ—

(सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार—प्रिये, इस समय देवगृह में कैसी ?

नटी—देव, गृह में इस समय कैसे ?

सू०—मैं तुम्हें सब स्थानों में ढूंढ़ता फिरा,—यहाँ आकर मिली हो ।

न०—मालूम होता है हिमालय में ले जाकर वैराग्य ने साथ छोड़ दिया ।

सू०—वैराग्य ! तुझे यह जानना चाहिए कि हिमालय में हरिणियें रहती हैं, मोर अपने पुच्छ-कलाप पर गर्व करते हैं, दिन में कमल खिलते हैं और रात्रि को चन्द्रमा चमकता है, कोकिल बोलती है, हंस चलते हैं··· ।

न०—(कुछ लज्जा से) और कुछ ?

सू०—मेरे हृदय में प्रीति बसती है और स्मृति में तुम्हारी मूर्ति ।

न०—ठीक !

सू०—किन्तु, मैंने उस मूर्ति का चित्र और ही रूप में खींच रखा था । उसमें अस्तव्यस्त वस्त्र परिधान कराये थे, आभूषणों का बहिष्कार कराया था, ओष्ठ की लाली उड़ाई थी, मुख-चन्द्र को क्षीण तथा रूखे घनकेशों

से छिपाया था—किन्तु प्रत्यक्ष देखता हूँ तो कुछ और ही छवि है, न वह एकान्त, (चारों ओर देख कर) अरे, यह तो अपनी नाट्य-सभा है ! क्या कोई प्रयोग हो रहा है ?

न०—(हँस कर) जी हाँ। आपका मेरा संयोग और उसके आनन्द में एक नाटक का प्रयोग।

सू०—कदाचित् यह दिखाओगी कि प्रवासी पति की प्रिया किस प्रकार जीवन बिताती है ?

न०—नहीं, इसे तो आपने किसी चाँदनी रात्रि में चकोरी से सुना होगा और कमलिनी में देखा होगा।

सू०—तो क्या······ (कुछ सोचता है)

न०—मैं कुछ शिक्षा दूँगी।

सू०—किसे,—मुझे ?

न०—नहीं नाथ, जनता को स्वयं-सेवा की शिक्षा देनी है।

सू०—क्या मैं ही नायक हूँ ?

न०—मेरी स्फूर्ति के नायक हैं आप, किन्तु इस नाटक के नायक हैं एक पुराण प्रसिद्ध पुरुष।

सू०—उसका कथानक तो कहो।

न०—एक समय भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन में युद्ध हो पड़ा था और उसका कारण बनी थी एक आश्रित निरपराधी जीव की प्राण-रक्षा। बातों में रंग आ जाने पर बड़े किसकी सुनते हैं—वही इस घटना में हुआ। पर उनका गर्व गिराने और दीन की प्राण-रक्षा करने में एक स्वयं-सेवक ने श्रम उठाया था।

सू०—वाह रे स्वयं-सेवक, वाह! कृष्ण और अर्जुन में युद्ध कराया—दो मित्रों को लड़वाया! हाँ, यह तो बताओ; वे पुराण-प्रसिद्ध स्वयं-सेवक कूटनीति से भरे कोई महत्वाकांक्षी राजा तो नहीं हैं, जो किसी दीन का प्रश्न लेकर—धर्म की दुहाई देते हुए दो मित्र राजाओं को आपस में लड़ाकर उनका राज्य हड़पना चाहते हों?

न०—महत्वाकांक्षी राजा नहीं; किन्तु—

कहता है संसार विश्व के कर्ता का सत्पुत्र जिसे,
जगतीतल के दुखी जनों का अतिशय प्यारा मित्र जिसे।
वीणा लिये घूमता है जो रटता रहता है गोपाल,
भूल रहा अपने को जग में तोड़ रहा दुःखों के जाल।
कहते हैं कलहप्रिय पर हैं जिसके कार्य सुखद अत्यन्त,
नीति निपुण मुनिवर्य वही है इस घटना का नायक संत॥

सू०—नारदीय लीला का यह नया अर्थ! यह तो निरा दुःसाहस दीखता है। पुराणों में या मुनियों में स्वयं-सेवा और मरुस्थल में मेवा—ये दोनों असम्भव। पुराण गप्पें हैं, और मुनि वे जीव हैं जो मौन साधन कर, संसार त्याग, किसी पहाड़ की गुफा में या मन्दिरों में धूनी रमाये हुए, गाँजा और भङ्ग की तरंगों के साथ परमार्थ-चिन्तन किया करते हैं। उन्हें सेवा कराने की आवश्यकता रहती है, सेवा करने की नहीं। स्वयं-सेवा तो यूरोपीय पौधा है, अंग्रेज़ी राज्य ने हमारे देश में लाकर लगाया है।

न०—(व्यङ्ग से) सच?

सू०—इसमें भी कुछ शंका है ? देखो, 'हिस्ट्री आफ़ एनशंट हिन्दू सिविलिज़ेशन' बाई विशेषज्ञ इतिहासाचार्य प्रोफ़ेसर विलियम नार्थ फ्लोट, एम० ए०, पी० एच० डी०, एफ० आर० ए० यू०, बी० सी० डी०, एट० टी० आइ० सी० यू० ।

न०—एफ० डबल ओ० एल०, आइ० डी० आइ० ओ० टी०, ए० एस० एस०,………… ।

सू०—तुम हँसी समझती हो ?

न०—नहीं, तुलसीदास जी ने भी तो अंग्रेज़ी राज्य से प्रभावित होकर लिखा था—

"पर-हित सरिस धरम नहिं भाई ।"

(नेपथ्य में सीटी और तालियों का बजना तथा कोलाहल होना)

नटी—चलिये, दर्शक अभिनय देखने के लिए उत्सुक हो रहे हैं । नाटक प्रारम्भ हो ।

(दोनों जाते हैं)

प्रथमांक।

प्रथम दृश्य।

स्थान—ऋष्याश्रम।

(दो ब्रह्मचारी बैठे हैं, पास ही कुछ घड़े पड़े हैं।)

एक—लो यह घड़ा, तुम भरो पानी। क्या मुझे ख़रीदा हुआ दास समझ रक्खा है? चले साहब, आप तो सीधे सीधे कामों में मस्त! भूखों को भोजन दे आये, भूले को मार्ग बता आये और मेरे माथे यह घड़ा मार रक्खा है, अरे हाँ!

दूसरा—शंख दादा, क्रुद्ध क्यों होते हो? मैं ये सब घड़े भर लूंगा, पर यह तो बताओ कि तुम बैठे बैठे कौन सी लङ्का जीत लोगे?

शङ्ख—ए, हम झख मारेंगे, तुम्हें क्या?

दूसरा—दादा, झख न मारना। उन बेचारे निरपराधी जीवों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? अहिंसा के विषय में गुरु जी की शिक्षा भूल गये मालूम होते हो।

शङ्ख—वाह रे शशि, धन्य तुम्हारी बुद्धि! झख भी कोई जानवर होता है? हँ हँ—तब तो आँख मारने में, पलक मारने में, हाथ मारने में, मन मारने में हिंसा होने लगी।

शशि—आप को मालूम नहीं, झख कहते हैं मछली को—ऐसा अमरकोष में लिखा है।

शङ्ख—बस महाराज, मारो उस अमर को। मैं विश्वास दिलाता हूँ आपको, इसमें कुछ हिंसा नहीं होगी। राम राम, जब से "यस्यज्ञान दयासिंधो" प्रारम्भ किया है, नाक में दम आ गया है। टीका टिप्पणियों में "दित्यमरः" लिखते लिखते लेखनी घिस गई। बेचारे विद्यार्थी-जीवन के लिए यही अमर काफ़ी था, परन्तु कहीं से पाणिनी महाराज निकल पड़े। रटो 'सुड़नपुन्स कस्य, स्त्री पुम्वच्च, असंभोगात् लुढ़कन्त, अन्ध भविताभ्यांच, शफ्लुवच्च, मुच्चि रिच्च विच्च सिच्च खिच्च गिच्च पिच्च अद् खिद् छिद् तुद्' ध-तेरे की, मेरा तो दम भर गया।

शशि—दादा, थोड़ा विश्राम लो।

शङ्ख—खूब विश्राम लेता हूँ। भरो पानी, मुझे अपने दिल की जलन बुझाने दो।

शशि—दादा, परिश्रम किया करो तो यह जलन उत्पन्न ही न हो। सतताभ्यास से मूर्ख भी पण्डित हो जाते हैं।

शङ्ख—परिश्रम तो मैं खूब करता हूँ और उसका यह परिणाम है कि अभी कहूँ कि भरो पानी, तो सतताभ्यासी महाराज, मेरे घूँसे को देखकर चुपके से पानी भरना ही पड़े। घूँसे के आगे 'सतताभ्यासी' की भी नहीं चलती।

गायन

है घूँसा देखो दुनियां में बलवान् ॥
इसको मारा उसको पीटा तुमको जो धमकाया।
पंचांगुलि का ऐक्य साध कर सब कुछ बस में लाया॥ है घूँसा० ॥

इसके आगे सब हो झुकते बड़े बड़े अभिमानी,
राजा झुकते रैयत झुकती मूर्ख और विज्ञानी ।। है घूँसा० ।।
है स्वतन्त्रता पराधीनता दोनों इसकी माया,
इस घूँसे में सब पोथों का सारा तत्व समाया ।। है घूँसा० ।।

(यों कह वह शशि की पुस्तकें छीन कर फेंक देता है ,

शशि—(पुस्तकें उठाते हुए क्रुद्ध होकर) तुम निरे शंख हो ।

(झाड़-पोंछ कर पुस्तकों को प्रणाम करता है ।)

शंख—(हाथ उठाकर आशीर्वाद देता है ।)

वत्स जियो कुछ वर्ष हर्ष को दूर भगाओ ।
बनो दया के पात्र गात्र को क्षीण बनाओ ।।
सदा बढ़े मन्दाग्नि आँख की ज्योति घटाओ ।
बनकर पुस्तककीट, जगत में ख्याति बढ़ाओ ।।
मेरा आशीर्वाद यह, शिर घूमे पर तुम नहीं ।
रोग-शोक-चिन्ताभवन हो जाओ तुम शीघ्रही ।।

शशि—यह क्या ?

शंख—पुस्तकों की ओर से आशीर्वाद ।

शशि—पुस्तकों का आशीर्वाद तो पाठशाला में प्रकट होता है । वहां शंख जी, आपको बेत और चपेट का आशीर्वाद मिलता है—उसे भूल गये ।

शंख—मेरा तो भूलना स्वभाव है ही, परन्तु तुम्हें सब याद रहता है । व्यायाम-शाला में पुस्तकें नहीं आतीं । याद होगा उस दिन का वह दांव, जब गिरे थे मुंह के बल ।

शशि—और कक्षा में संस्कृत, पाली, पश्तो इत्यादि के समय बैठते हो मुँह लेकर ! (मुँह बनाता है)

शंख—रहने दीजिये महाराज अपनी संस्कृत, पाली और पश्तो को। हमें कहीं गुप्तचर नहीं बनना है और न किसी की चुगली खानी है।

(ऋषि का प्रवेश; उन्हें आया जान)

तुम तो हमें खाये जाते हो जैसे; रहने दो, तुम्हें तो लड़ने की आदत पड़ गई है।

शशि—(ऋषि को देखकर) देव प्रणाम।

शंख—(ऋषि को लम्बी आवाज़ में) महाराज प्रणाम।

ऋषि—वत्स, दोनों कर्मवीर बनो (शंख से) शंख, यह क्या झगड़ा है ?

शंख—महाराज, क्या कहूँ ? ये कन्धे देखिये (कन्धे दिखाता है) प्रति दिन प्रातःकाल घड़े उठाते उठाते दुखने लगे हैं। आज मैंने शशिभूषण जी से कहा—भैया, दो एक घड़े भरने में कुछ सहायता कर दो; तो कहने लगे, भैंसे का सा शरीर लिये हो, घड़े भी नहीं उठते ?

शशि—गुरु जी, स्नान का समय हो गया है, शंख दादा की बातें तो होती ही रहेंगी।

गालव—वत्स, चलो, पुण्य-सलिला भगवती भागीरथी में स्नान कर विश्व की विजयनी शक्तियों का आवाहन करें।

शंख—पर महाराज, भगवती बड़ी ठंढी हैं, हिम की महतारी रखी हैं। रोज़ रोज़ सबेरे नहाते जी ऊब उठता है (स्वगत) न जाने इससे कब पिण्ड छूटता है।

शशि—हिम की महतारी नहीं पुत्री हैं।

गालव—(चलते हुए) क्यों शशि ?

शशि—ना महाराज, उषाकाल की शान्त और मधुर वायु हृदय में बिजली दौड़ाती है।

शंख—(स्वगत) शायद इसी लिए थर थर काँपते और दाँत कटकटाते हो।

शशि—भगवती भागीरथी में स्नान करने के पश्चात् कितना आनन्द आता है ?

शंख—(स्वगत) यहाँ तो प्राण जाता है।

शशि—उनकी तरंगमयी गोद में तैरते हुए बड़ा ही भला मालूम होता है। जब तरंगें शरीर से आकर लगती हैं, तब दीखता है मानों माता थपकियाँ दे रही हैं।

शंख—थपकियाँ ? अरे हंटर मार रही हैं, हंटर ! मैं तो मरा जाता हूँ। थपकियाँ ! देखना कहीं माता की गोद में सो न जाना।

शशि—भारत मां के सपूतों के हृदयों की धधक, यदि भगवती गंगा न होतीं तो कौन बुझाता ?

शंख—पसीने और आँसुओं की धारा-माता।

(तीनों का जाना)

द्वितीय दृश्य।

स्थान—गङ्गातट।

(एक गंधर्व अपनी स्त्री और उसकी सखी सहित विमान द्वारा उतरता है। कपड़े उतार कर सब गंगा में तैरते हैं।)

गंधर्व—(तैरते हुए) प्रिये चित्रांगि, तुम्हारे कोमलांगों के स्पर्श से मृदुता का पाठ सीख ये लहरियें धीरे धीरे मेरे पास

आती हैं—मानों सशंक भाव से यह पूछने के लिए कि हममें वह कोमलता आई है या नहीं ?

सखी—प्रिय सखि चित्रांगि, चित्रसेन महाराज ठीक तो कहते हैं। इन तरंगों में कहीं कहीं छोटे छोटे गड्ढे भी हैं, मैं कह सकती हूँ कि यह तुम्हारे कपोल-भंग का अनुकरण हैं।

चित्रसेन—चंचल मछलियें आँखों का अनुहार करती हैं, सिवार इन लहराते हुए केशों का, और भँवरें इनकी गुन-गुनाहट का।

चित्रांगी—बस महाराज।

सखी—और—

चित्रांगी—(कुछ क्रोध प्रकट कर) क्यों प्रेमलता, चुप न रहेगी ?

प्रेमलता—सखि, मैं कहने वाली थी कि गङ्गा में मेरी सखी के स्वरूप का सभी सामान है, किन्तु मैं अब यही कहूँगी—गङ्गा तेरा प्रयत्न व्यर्थ है। मुसकुराते हुए बदन पर क्रोधभरी भौंहों का योग तू किस प्रकार साधेगी ?

चित्रांगी—गङ्गा बेचारी क्या योग साधेगी, किन्तु इस समय तुम दोनों का योग खूब सधा है।

प्रेमलता—सखी चिढ़ो न, तुम हमारे हृदय की प्रशंसा नहीं करतीं कि हम दोनों तुम्हारे स्वरूप को संसार की प्रत्येक वस्तु में देखते हैं।

चित्रसेन—ठीक कहा सखी, परन्तु पूर्णतया नहीं। यह नदी चंचल है, मेरी प्रिया नहीं।

प्रेमलता—सखी का मन तो चचल है।

चित्रांगी—हाँ हाँ चंचल है, किन्तु तुझ से कम।

चित्रसेन—प्रिये, चलो उस पोखर में से कमलों को तोड़ लावें ।

(सब एक ओर तैरते हुए जाते हैं और दूसरी ओर से ऋषि और उनके दोनों शिष्य गंगातट पर आते हैं)

ऋषि—वत्स, यह स्थान अति उत्तम है, यहीं संध्योपासन करें ।

शशि—यथा आज्ञा ।

(ऋषि के लिए आसन डाल देता है और ऋषि प्राणायाम चढ़ा कर ईश्वराराधन में लीन होते हैं ।)

शंख—मछलियाँ तो, शशि बड़ी बड़ी हैं—हमारे बंग देश में तो—

शशि—अरे कहाँ यह पुण्य-स्थान, कहाँ ये विचार ! तुमने स्नान किये ?

शंख—क्या हमने कोई पाप किया है ? तुम्हीं रोज़ नहाओ । और, मैंने तुम से कह दिया था कि स्नान करते समय मेरे नाम की एक डुबकी लगा लेना, सो नहीं लगाई मालूम होता है ।

शशि—दादा, साधना का समय निकला जाता है । मानों ज़रा ।

शंख—सो भाई हमसे तो यह दम-घोंटना नहीं बनेगा । हम जाते हैं, तुम घड़े भर लाना, अरे हाँ ।

शशि--पर स्नान तो कर आओ ।

शंख—तुम अपनी आँखें मूँदो; तुम्हें हमसे क्या ?

(शशि पद्मासन लगाकर आँख मीच कर ध्यानमग्न होता है, शंख उसके आस पास घड़े जमा कर रख देता है)

शंख—(स्वगत) वाह महाराज, अब भले शोभते हो—जैसे भूगोल-शास्त्र के चित्र में गोल गोल ग्रहों के बीच सूर्य ।

(शंख दण्ड बैठक लगाता है । ऊपर चित्रसेन आदि का आगमन । वे किनारे और पेड़ों की ओट में होने के कारण ऋषि इत्यादि को नहीं देखते हैं ।)

चित्रांगी—नाथ, उषा आ गई। उसका प्रति प्रभात भी आता ही होगा। चलें, नहीं तो वह हमारी लज्जा में बाधा डालेगा।

प्रेमलता—स्त्री-जाति दयालु होती है। उषा प्रथम आकर क्यों न सचेत करे?

चित्रसेन—तो प्रेमलता, जाओ, विमान सजाओ। भगवान मरीचिमाली का भय खाओ, जाओ।

प्रेमलता—जो आज्ञा (जाती है)

चित्रसेन—प्रिये चित्रा, तुम्हारे बालों को बिखेर कर, अङ्गराग को धोकर, ओष्ठों का तमाल रंग छुड़ाकर, और तुम्हारे वस्त्रों को अस्तव्यस्त कर यह गंगा किस ठठोली से कल कल हँस रही है?

चित्रांगी—और हाँ, आप यह तो बताइये, उस कमल-वन में मुझे कमल-दल में उलझा कर आप और प्रेमलता डुबकी लगाकर दूर क्यों चले गये थे?

(प्रेमलता का प्रवेश)

प्रेमलता—महाराज, विमान तैयार है, पधारिये।

(तीनों विमान पर बैठते हैं, विमान आकाश की ओर उठता है। शंख विमान को देख चकित होकर इसकी सूचना देने के लिए शशि को ध्यान से हटाने का यत्न करता है, शशि ध्यान-मग्न ही रहता है। शंख आकाशगामी विमान की ओर पागल की भांति देखता है और फिर दण्ड करने लगता है। कुछ देर बाद शशि जागता है।)

शंख—(दण्ड पेलते हुए) तुमने सब डुबा दिया, सब डुबा दिया।

शशि—पर तुम यह क्या कर रहे हो? गुरु जी की आज्ञा तो प्राणायाम करने की थी, फिर यह सपाटा कैसा?

शङ्ख—क्यों ? क्या व्यायाम किसी प्राणायाम से कम है ।

(फिर दण्ड लगाता है)

चित्राङ्गी—(वायुमण्डल में) नाथ, लीजिये यह पान; मुख का पान फेंक दीजिये ।

चित्रसेन—लाओ प्यारी ।

(चित्रसेन मुख का पान थूक देता है और नया पान खाता है । थूका हुआ पान ऋषि की अञ्जलि में आकर गिरता है और विमान आगे बढ़ जाता है)

गालव—(क्रोध भरी मुद्रा से, जोर से) दुष्ट, चांडाल, अधम !

शङ्ख—(डर कर भागते हुए) ना महाराज, प्राणायाम प्राणायाम । शुद्ध, स्वच्छ, पवित्र प्राणायाम कर रहा था ।

ऋषि—मैं ध्यान में था । यह किस दुष्ट का कार्य है ? मृत्यु के निकट जाने की किस पापी की अभिलाषा है ?

शङ्ख—(स्वगत) बाबा मैं तो दूर भागता हूँ ।

शशि—क्षमा हो देव ! अभी यहाँ कोई नहीं आया । कहीं आकाश से न गिरा हो ।

शङ्ख—(डरते डरते, एड़ियाँ उठाये आकर शशिकी ओरसे झाँककर धीरेसे) क्या है मछली है कि मेंढक या किसी कौए की बीट ?

शशि—देव, शांत हूजिए । किसी से अनजान में अपराध हुआ ।

गालव—रे दुष्ट, इतनी मदान्धता ! मन्त्रों से पवित्रीकृत, पुण्या भागीरथी के जल से भरी हुई भगवान सूर्यदेव के अर्घ्य की अञ्जलि थूकने का पात्र होने लगी ? ऋषि-जीवन का योग्य सम्मान है, उचित पुरस्कार है । (उस अञ्जलि को फेंककर) ले. अब दूसरी अञ्जलि जिसमें तेरा—

शशि—भगवन्, क्षमा हो। यह इन्हीं चरणों की शिक्षा है कि तप और क्रोध एक साथ नहीं हुआ करते। जब अपराधियों को दण्ड देने और दुष्टों के दमन करने के कार्य्य भी तपस्वी करने लगेंगे तब, भगवन् देश के शासक और योद्धा क्या करेंगे ?

ऋषि—(कुछ सोचकर शशि से) मैं रुकता हूँ पुत्र, किन्तु (आकाश की ओर देखकर) रे दुष्ट, मैं तुझे जानता हूँ। मदान्ध चित्रसेन गन्धर्व, तूने गालव का अपराध किया है, अब तेरी कुशल नहीं। (शशि से) वत्स, चलो। देखें, सत्ताधारी इस विषय में क्या करते हैं ? (सब जाते हैं। शङ्ख मुख फुला कर और हाथ हिलाकर चेष्टाओं से यह दिखाता है कि गुरु जी आज क्रुद्ध हैं।)

तृतीय दृश्य ।

स्थान—वन ।

(वीणापाणि मुनि का गाते हुए प्रवेश)

गायन

दानव-कुल-निशि-पतङ्ग जय जय ।
दानव-कुल-निशि-पतङ्ग जय जय ॥

(स्वगत) तुम्हारी गति कौन जानता है—तुम्हारी शक्ति कौन पहचानता है, भगवन् !

नय निधान, बल महान्, जगत प्राण हे ॥

मतिदायक, गतिदायक, धृतिदायक, कृतिदायक,
अहमिति की स्मृति दायक,
प्रतिक्षण जागृत दायक,

व्याहृत व्यवहृति दायक, जगत त्राण है ॥ नय निधान० ॥

(स्वगत)—और वह माधव और माधव की मुरली ! मुरली, मुरली तुझे धन्य है ।

भव-भीषण-भ्रांति-हरण,
उन्नति उत्क्रांति करणि,
विश्व विजय मंत्र भरणि,

अगम सुगम, अघट सुघट, घटना पलपल पलटत—
वशीकरण मंत्र मधुर मुरलि तान है ॥ नय निधान० ॥

(स्वगत)—और जिसमें माधव की वह मनमोहिनी मुरली गूंजती है वह मनोरम भूमि कौन सी है ?

भारत जग जीवन यह,
गोकुल—गोवर्धन यह,
माधव क्रीड़ाङ्गण यह,

गोपालक तू गोपाल, तेरे हम ग्वालबाल,
दौड़ दौड़ आ सँभाल, हठ न ठान है ॥ नय निधान० ॥

किन्तु नारद, वह कुछ भी नहीं । पर मुझे ऐसा दीखता क्यों है ? मुझे प्रतीत होता है, विश्व में कोई विकट घटना घटना चाहती है । शांति हटना चाहती है । तो क्या, पृथ्वी फटना चाहती है ? अच्छा, तो मैं कहाँ जाता था ? वृन्दावन । वहाँ गोपाल-विरह में दग्ध उस वृन्दावन में अब किसी बड़ी घटना की आशङ्का नहीं । पृथ्वी पर कोई भारी अत्याचारी भी नहीं रहा । (कुछ ठहर कर) अच्छा, द्वारिका चलूं; भगवान कृष्ण से हृदय का हाल कहूँ । उनकी एक ही उक्ति मेरे मन की अशान्ति मिटा देवेगी ।

दानव-कुल-निशि-पतङ्ग जय जय ।
दानव-कुल-निशि-पतङ्ग जय जय ॥

(नारद-गमन)

चतुर्थ दृश्य ।

स्थान—राजभवन का एक भाग ।

(मोर मुकुट मुरलीधर पुरुष का प्रवेश)

पुरुष—(स्वगत) कौन जानता है, वहाँ क्या होता होगा ? होता होगा मेरा स्मरण करते हुए हृदयों का संहार, मेरा मनन करते हुए अप्रिय व्यापार, और मेरे गुण गाते हुए वियोग से हाहाकार; और, चढ़ता होगा मेरी मानसिक मूर्ति पर अश्रुओं का गद्‌गद हार । वृन्दावन, अहा ! वृन्दा—

वृन्दा ! तुझ में भरा हुआ है मेरे बालकपन का रङ्ग,
लाड़ जसोदा मैया का वह भैया बलदाऊ का सङ्ग ।
ग्वाल बाल की सुखद मंडली, गौवें यमुना और निकुञ्ज,
राधा सह सखियों का आना, चन्द्र साथ ज्यों तारक पुञ्ज ।
ध्वनि मुरली की रासरङ्ग वह जल क्रीड़ा स्वच्छन्द विहार,
कैसे भूल सकूंगा वृन्दा, माखन मिश्री का उपहार ।
हाय ! याद वह दुखदाई है, आज कन्हैया रोता है,
नन्द बबाजू मुझ से पूछो, बेटा कह क्या होता है ।

उफ़, हृदय, शान्त हो । आज, कितने ही दिन बाद, मुझे यह स्मृति हुई । इन आंसुओं से हृदय तृप्त हुआ । (ठहर कर) थोड़ी

देर मुरली बजाऊँ, मन की थकन मिटाऊँ। पर कौन सुनेगा ? मैं तो हूँ; जी बहलाऊँगा, व्याकुल हृदय को समझाऊँगा।

(कृष्ण का मुरली में एक तान गाना)

(नेपथ्य में—यादव-कुल-भूषण महाराज की जय हो। पधारिये महाराज)

कृष्ण – (मुरली छिपा कर) दादा बलदाऊ जी तीर्थयात्रा से आज ही लौटे हैं। भोजनोपरान्त शयन कर मेरे पास आ रहे हैं !

(बलराम और दो पुरुषों का प्रवेश)

कृष्ण—प्रणाम दादा।

बलराम—वत्स, विजयी बनो।

(दोनों पुरुष कृष्ण को प्रणाम करते हैं)

कृष्ण—(उनमें से एक को) कहो ऊधव, प्रसन्न तो हो ? (दूसरे से) सात्यकि, कुशल है न ?

दोनों—आपकी दया से, आनन्द है।

(बलराम मुख्यासन पर विराजते हैं तथा अन्य सब अपने योग्य आसनों पर बैठ जाते हैं।)

बलराम—कृष्ण, कुछ उदास दीखते हो—क्या कारण है भला ? निर्जीव पदार्थों में भी सजीवता का भास दिलाने वाली वह तुम्हारी स्वाभाविक मुस्कुराहट कुछ फीकी मालूम होती है ! राज्य में कोई उपद्रव तो नहीं हुआ ?

कृष्ण—नहीं महाराज। आज अकेला रहने के कारण वृन्दावन की सुधि आ गई थी, किन्तु आपके दर्शन से मैं उसे फिर.......................

बलराम—यह तो कह गोपाल, देश के गोवृन्द की क्या अवस्था है ?

कृष्ण—(प्रसन्न होकर) गोवृन्द ? दादा उस वृन्दावन की धूलि ने, माता यशोदा की गोद ने, ग्वालबालों के प्रेम ने और सब से अधिक उन धौरी, धूमर, मनहर, वृन्दा, ललिता, कमली, काजल, कृष्णा आदि गायों ने अपनी जीभ से चाट कर, अपने गोबर से मेरे वस्त्र लपेट कर, अपना अमृतमय दूध पिला कर मुझे सदा के लिए गोवंश का दास बना लिया है। मुझे खूब याद है जब मामा कंस के कुवलया पीड़ हाथी को पछाड़ा था, तब बल-दायिनी गौओं की मधुर मूर्ति मेरे ध्यान में थी।

बलराम—अहा !

कृष्ण—(प्रवाह न रोकते हुए) आज भी जब कोई मुझे गोपाल कह कर पुकारता है तब, दादा, मैं समझता हूँ कि वह मुझे जानता है, पहिचानता है। गो-रक्षा, मैं स्वयं करता हूँ और हमारे राज्य में गौओं का आदर जन्म-दात्री जननी से किसी प्रकार कम नहीं है।

बलराम—तपोवन की व्यवस्था तो भली प्रकार है न ?

कृष्ण—ऋषि-महर्षियों का परमार्थ जीवन आनन्द से कटता है। कर्मयोग का तत्वज्ञान प्रजा के हृदयों को उच्च बना रहा है। वेद-गान से प्रत्येक मंदिर गूंजता है और प्रत्येक गृह की यज्ञाहुतियों की सुगन्धि से राज्य का वायुमंडल पवित्र हो रहा है।

(नेपथ्य में—यादव-कुल-राज की जय हो।)

(प्रियंवद का प्रवेश)

एक यादव—क्या है प्रियंवद ?

प्रियंवद—महाराज, तपोधन गालव मुनि अपने दो शिष्यों के साथ पधारे हैं । क्या आज्ञा है ?

बलराम—आज्ञा क्या ? यह राज-द्वार सब के लिए सदा खुला रहता है—तिस पर वे ऋषि ! जाओ, उन्हें लिवा लाओ ।

(प्रियंवद जाता है)

एक यादव (दूसरे से मन्द आवाज़ में) मित्र जयपाल, राजसभा में कैसी शांति है, मानों कोई तूफ़ान आने वाला है ।

(गालव, शशि और शंख का प्रवेश । बलराम कृष्णादि सब खड़े होकर प्रणाम करते हैं । गालव कुछ नहीं बोलते ।)

बलराम—यह दास बलराम आपको प्रणाम करता है ।

श्रीकृष्ण—सेवक कृष्ण आपके चरणों में शिर सावनत है ।

(वे दोनों यादव भी प्रणाम करते हैं)

शंख—(स्वगत) नहीं पसीजेंगे, तुम चाहे सिर दे मारो । किंतु, इस मुद्रा से मुझे लाभ तो बहुत हुआ, छुट्टी मिली, छुट्टी पढ़ने लिखने से, नहीं तो कौन (मन में रटने का सा नाट्य करता है) करता बैठता ।

गालव—(कड़क कर) बलराम ! (सब चौंक कर उनकी ओर देखने लगते हैं) सत्ता आज तुम्हारे हाथ में है, इसके सम्बन्ध की सब बातें तुम्हें जाननी चाहिये । क्या तुम्हें ज्ञात है, जो राजा प्रजा के दुःखों का स्मरण नहीं रखता, वह राज्य को नाश की ओर दौड़ाता है ! क्या जानते हो, यही दशा तुम्हारी हो रही है ?

बलराम—महाराज ! गो, ब्राह्मण और तपस्वियों की रक्षा का प्रबन्ध स्वयं गोपाल-कृष्ण करते हैं और पूर्ण यत्न किया जाता है कि ऋषि-मुनियों की धर्म-क्रियाओं में कोई बाधा न डाल सके और सब स्थानों में उनका सर्वोत्तम सम्मान हो ।

गालव—धिक्कार है तुम्हारे प्रबन्ध और सम्मान को। दीखता है, तुम्हें गर्व होगया है । सोचते होगे, जिस शक्ति को युद्ध में लगाकर दुर्योधन जैसे को दुनियाँ से उठा दिया उस शक्ति को प्रजा-पालन जैसे साधारण काम में क्यों लगावें ? तुम्हें विजयोन्माद होगया है । तुम भरपूर सोते दीखते हो । इसी से विश्व-मर्यादा टूट रही है । प्रजा-पालन क्या इस प्रकार भुलाया जाता है ?

श्रीकृष्ण—हुआ क्या देव, कृपा कर कहिये तो ?

गालव—कहूँ क्या, दुःख होता है । आज प्रातःकाल की बात है । मैं गङ्गा-स्नान कर भगवान् सूर्य्य को अर्घ्य देने के निमित्त अञ्जलि में गङ्गा-जल लिये मंत्र जप रहा था, इतने में एक चाण्डाल ने मेरी उस अञ्जलि में पान थूक दिया । सोचो तो यह कैसा अनर्थ है ? मैं अब तुम्हारी सीमा में न रहूँगा—वहाँ रहूँगा, जहाँ अपराधी उचित दण्ड पाते हैं ।

श्रीकृष्ण—(कुछ क्रोध भरी मुद्रा से) भगवन्, आपका जिसने अपमान किया है यदि आपसे वह क्षमा न किया गया तो कल सन्ध्या तक मैं उसे दण्ड दूँगा—प्राण-दण्ड दूँगा । कृपया कहिये तो देव, वह दुष्ट है कौन ?

गालव—जो डरपोक मार खाने के भय से जितना राक्षसों से घबड़ाता है उतना ही तपस्वियों से, इसलिए कि कहीं स्वर्ग न छूट जाय, भय खाता है। उस इन्द्र का मदान्ध गन्धर्व चित्रसेन, इस नीचता का अपराधी है ।

कृष्ण—ओह ! न कुछ गन्धर्व ! पर वह इन्द्र का है न ?

सात्यकि—इन्द्र आज गोवर्धन की बात भूल गया है !

कृष्ण—अस्तु, महाराज, मैं दृढ़तापूर्वक कहता हूँ कि वह मदान्ध मेरे हाथ से प्राण-दण्ड पावेगा।

ऊधो—महाराज, नीति का विधान तो इस अपराध पर प्राण-दण्ड है ...

कृष्ण—उस विधान को रहने दीजिये। वह चाण्डाल प्राण-दण्ड ही पावेगा।

बलराम—मुनिराज ! शान्त हूजिए, हम लोग सेवक हैं।

(नेपथ्य में—महाराज की जय हो, श्रीदेवर्षि पधारते हैं)

('दानव-कुल-निशि-पतङ्ग जय जय' गाते हुए नारद का प्रवेश)

बलराम—पधारिये देव, बड़ी कृपा की, प्रणाम ।

कृष्ण—प्रणाम देवर्षि। आज्ञा दीजिये।

(शेष सब प्रणाम करते हैं)

नारद—विजयी भव। कुछ नहीं, यों ही दर्शनार्थ चला आया। पर... (गालव को देखकर) मुक्तिवर, नमोनारायण।

गालव—नमोनारायण देवर्षि, विराजिये।

(सब यथायोग्य आसनों पर बैठते हैं)

नारद—आप यहाँ कैसे ? हरि के दर्शनार्थ।

शंख—(स्वगत) कुछ न पूछिये, नहीं तो ... ...

(शाप देने की क्रिया की चेष्टा करता है)

गालव—नहीं मुनिराज, असावधानी का उपालम्भ देने । प्रातः सूर्य को अर्घ्य देते समय मेरी अञ्जलि में चित्रसेन गन्धर्व ने पान थूक दिया । मैंने इन्हें मर्यादा-भङ्ग की सूचना दी है ।

शंख—(स्वगत) यह कौन सी भङ्ग निकली बाबा ! पर हमारे गुरूजी बड़े झूठे हैं—कहते हैं हमारी अञ्जलि में पान थूक दिया । यों क्यों नहीं कहते कि पान गिर गया ।

नारद—हर, हर ! अपराध तो उसने अवश्य किया है । (स्वगत) क्या यही घटना मेरे हृदय की अशांति का उत्तर होगी ?

कृष्ण—देव, ऋषिवर का अपराधी, वह, यदि ऋषिवर से क्षमा प्राप्त नहीं कर सका तो कल सन्ध्या तक मेरे हाथों से प्राण-दण्ड पावेगा ।

नारद—प्राण-दण्ड ? (स्वगत—इतने छोटे अपराध के लिए इतना भारी दण्ड)

नारद—(गालव से) मुनिराज, यह तो कहिये, वह प्रसङ्ग कौन सा था ? उस चित्रसेन ने बड़ी धृष्टता की, जो आपके निकट आकर अर्घ्य की अञ्जलि में पान थूका ।

शंख—(स्वगत) फँसे, फँसे महाराज !

गालव—नहीं, वह स्वयं मेरे निकट नहीं आया, किंतु विमान द्वारा आकाश-मार्ग से जाते हुए उस दुष्ट ने मेरी अञ्जलि में पान थूका । उस मदान्ध की धृष्टता तो देखिये ।

नारद—तपोधन, यह कुछ अंशों में असावधानी कही जा सकती है । यदि वह इसे जान जावे तो अवश्य

पश्चाताप करेगा। किन्तु, (कृष्ण से) इस न कुछ भूल के लिए इतना भारी दण्ड तो, अन्याय है। अतएव उसे क्षमा मिलनी चाहिए।

शंख—(स्वगत) हमारे गुरू जी तो नहीं करेंगे।

सात्यकि—(स्वगत) किन्तु कृष्णचन्द्र तो प्रण कर चुके हैं।

नारद—(गालव से) तपोधन, उस दीन पर दया कीजिये। वह क्षमा का पात्र है।

गालव—देवर्षि, मैं क्षमा नहीं कर सकता; धर्म-कार्य में बाधा मैं कदापि नहीं सह सकता।

नारद—ठीक है। तो कृष्णचन्द्र, न्याय-धर्म के पालनार्थ आपही अपनी प्रतिज्ञा तोड़िये।

श्रीकृष्ण—नहीं महाराज, उस दुष्ट का प्राण-दण्ड अब निश्चित समझिए। प्रतिज्ञायें बदलने के लिए नहीं होतीं।

नारद—(स्वगत) एक धर्माभिमानी हैं, दूसरे राजाभिमानी। दोनों का गर्व चूर होना चाहिये। (प्रकट) आपकी प्रतिज्ञायें मुझे खूब याद हैं; आप भी भूले न होंगे। महाभारत में शस्त्र न लेने की प्रतिज्ञा–वह भी तो आपकी ही थी–और टूटी।

कृष्ण—(कुछ लज्जित और उद्विग्न होकर) देवर्षि ! गड़े पत्थर न उखाड़िये। चित्रसेन मारा जायगा। मैं सच कहता हूँ, यदि ऐसा न करूं तो मैं वसुदेव देवकी का पुत्र नहीं।

(शंख, मूछ न होने पर भी मूछ पर हाथ फेरने का नाट्य करता है)

नारद—आपकी इस बात में भी कूट है, गोपाल ! प्रतिज्ञा पूर्ण न होने पर आप मजे से नन्दकुमार और यशोदानन्दन बन कर छूट जावेंगे ।

श्रीकृष्ण—नहीं, ऐसा न होगा—

बध होगा, बध होवेहीगा, वह न बचेगा यम का ग्रास ।
करने दूँगा मद-मस्तों को क्या मैं मर्यादा का नाश ?

(नारद मुस्कुराते हैं)

हँसी नहीं, क्या करदूं क्षण में उसका अन्त फेंक कर चक्र ।
होजावे, आज्ञा आने पर जिसमें नष्ट देव-पति शक्र ॥
विश्व बचाने आत्ते उसको, भारी ठोकर खावेगा ।
वह मदान्ध अपराधी मारा, मारा, मारा जावेगा ॥

(सब का घबड़ा कर खड़े होना)

(यवनिका-पतन)

प्रथमाङ्क समाप्त ।

द्वितीयांक ।

प्रथम दृश्य ।

स्थान—मार्ग ।

(नारद का 'दानव-कुल' गाते हुए प्रवेश)

नारद—(स्वगत) मैं अपना प्रयत्न कर चुका । तपस्वी क्षमा नहीं करेंगे, और श्रीकृष्ण प्राण-दण्ड देवेंगे ही—देखा जाता है । क्या सत्ताधारी होकर श्रीकृष्ण यह अत्याचार कर डालेंगे ? पर जब तक मैं हूँ, भगवान् को इस कार्य से बचाऊँगा । यह सत्ता का दुरुपयोग नहीं, तो क्या है ? कल रोते हुए मेरी आँख का आँसू किसी पवित्र ब्राह्मण देवता पर गिर जायगा, बस, फिर वही कठिन प्रतिज्ञा और फिर यही प्राण-दण्ड ! न जाने आप क्या कर रहे हैं गोपाल !

गायन ।

माधव तुमको का समझावें ।
प्रीति रीति और नीति कहो तो कैसे तुम्हें बतावें ? माधव० ॥
उत अत्याचारिन नाशन को, भारत रचि लड़वावें ।
इत सोई करिबे को ठाढ़े, का कहि तुम्हें जतावें ॥ माधव० ॥

इच्छा, मरज़ी आपकी जो चाहो करो । (ठहर कर) अच्छा, अब प्रथम मैं उस असावधान अभागे चित्रसेन को सचेत करूँ, जिसे यह दण्ड मिलना है ।

('दानव-कुल-निशि-पतङ्ग' गाते हुए जाते हैं)

द्वितीय दृश्य ।

स्थान—चित्रसेन का शयन-गृह ।

(चित्रसेन और चित्रांगी का प्रवेश)

चित्रसेन—

गायन ।

प्रिया, चलें आवें मचावें मोद,
गावें, हँसावें, खिलावें, रिझावें, लगावें हृदय सविनोद ॥ प्रिये० ॥
गङ्गा-विहार से हार गये हम,
मौज मनोज की मार गये हम,
करें विनोद प्रमोद ॥ प्रिये० ॥
हिय हुलसाओ, पल न लगाओ,
नयन जलत हैं, आओ, आओ;
मन में फूलें, चिन्ता भूलें चलें नींद की गोद ॥ प्रिये० ॥

चित्रांगी—लीजिये नाथ ! शय्या तैयार है, थकन मिटाइये ।

(नेपथ्य में—दानव-कुल-निशि-पतङ्ग जय जय ।)

(दासी का प्रवेश)

दासी—महाराज, देवर्षि का आगमन सुनाई दे रहा है ।

चित्रसेन—अच्छा, आने दो । (दासी का गमन)

चित्रांगी—इस समय देवर्षि का आगमन ! भला क्या कारण हो सकता है ?

(नारद का प्रवेश—गाते हुये 'दानव-कुल-निशि-पतङ्ग०')

चित्रसेन—श्री देवर्षि के चरणों में प्रणाम ।

चित्रांगी—भगवन्, यह दासी प्रणाम करती है ।

नारद—(गंधर्व से) विजयी हो (चित्रांगी से) सौभाग्यवती हो। कहो, क्या कर रहे थे ?

चित्रसेन—(संकोच से) रात्रि को जाह्नवी में क्रीड़ा करता रहा। अभी भोजनादि से निवृत्त हुआ ही हूँ, आँखें जल रही हैं, शयन की योजना कर रहा था।

नारद—अब इस आमोद-प्रमोद को छोड़ो, अपने प्राण बचाने की योजना करो।

चित्रसेन—(चिंतित और व्याकुल मुद्रा से) भगवन्, यह आप क्या कह रहे हैं ?

चित्रांगी—और मेरे सौभाग्य के आशीर्वाद के पश्चात् ही ?

नारद—(चित्रसेन से) मैं ठीक कहता हूँ, और तू मर न जाय इसलिए। तुझे प्राणदण्ड होने वाला है, सुना ?

चित्रसेन—मैंने तो अपने जानते किसी का कोई अपराध नहीं किया। फिर कौन दण्ड देगा और क्यों ?

नारद—तू ने अपराध नहीं किया ? हँ, हँ। सुन, तूने ऋषि गालव का अपराध किया है—ऋषि गालव महाराज का। गत-रात्रि को गङ्गा किनारे जो तू ने पान का उगाल, विमान से पृथ्वी पर फेंका वह तेरे दुर्भाग्य से सूर्य को अर्घ्यदान देने के लिए, गङ्गाजल से भरी हुई गालव ऋषि की अञ्जलि में जा पड़ा।

चित्रांगी—हाय !!!

चित्रसेन—(व्याकुल होकर) महाराज बड़ा अपराध हुआ ! फिर क्या मुनि मेरे पापी शरीर को शाप देकर भस्म किया चाहते हैं ?

नारद—नहीं, सुन। उन्होंने इस बात की सूचना भगवान् श्रीकृष्ण को दी। अपराधी को दण्ड कौन नहीं देता! उन्होंने सब हाल सुनकर तुझे कल संध्या तक प्राण-दण्ड देने की प्रतिज्ञा की है!

चित्रसेन—महाराज कितना कठोर दण्ड है। अब मैं क्या करूं?

नारद—हां, तेरे साथ अन्याय तो हो रहा है।

चित्रांगी—मैं स्वयं तपोधन गालव मुनि के पास जाऊँगी, उनके सामने अपने भावी वैधव्य-दुःख की भयङ्करता कहूँगी, मेरी इस नयी उम्र पर उन्हें कुछ दया आवेगी, वे क्षमा कर देंगे या करा देंगे।

नारद—चित्रे, तू किस भ्रम में है। बलवान किसकी सुना करते हैं? एक बार उनके मुख से जो निकल चुका उसे पत्थर की लीक समझो; प्रतिज्ञा-भङ्ग के भय से वे अपनी बात स्थिर रहने में ही धर्म और गौरव समझते हैं। मैं यत्न कर चुका हूँ; किन्तु, मुनिराज पिघले नहीं।

चित्रसेन—अब कौन सा उपाय है महाराज?

नारद—अरे, स्वामी का धर्म हुआ करता है कि सेवकों पर विपत्ति पड़ने पर वे उनकी रक्षा करें। सो तू अपने स्वामी इन्द्र के पास जा और जीवन की भिक्षा मांग; क्योंकि दास अपनी आपत्ति में स्वामियों को ही पुकारते हैं, वे स्वयं कुछ नहीं कर सकते। पर देख, इस भीख का जो परिणाम हो वह मुझे सुना देना। अच्छा तो चलता हूँ......।

'दानव-कुल-निशि-पतङ्ग जय जय।'

(नारद जाते हैं।)

तृतीय दृश्य।

स्थान—ऋषि-आश्रम।

(शंख और शशि का प्रवेश)

शशि—मुझे आश्चर्य होता है कि विद्वान् भी छोटी छोटी बात का इस प्रकार बतङ्गड़ बना देते हैं। मैं पूछता हूँ कि लोग लड़ क्यों पड़ते हैं?

शंख—इसका उत्तर तुम्हें मिलेगा—बल वाली भुजाओं में, कड़े पट्ठों में, जोशीले खून में और उद्दण्ड महत्वाकांक्षाओं में।

शशि—अस्तु, वे बड़े हैं, जो कुछ करते हैं वह ठीक ही होगा।

शंख—गुरूजी ने मुझे आज्ञा क्यों नहीं दे दी, उस चित्रसेन को तो मैं ही मार डालता और उसका विमान छीन लेता। उस चाण्डाल, अधम, पापी, नीच, भ्रष्ट (एक एक अंगुली पर गिनता है) को दण्ड देता।

शशि—भाई, कोई मनुष्य अपराधी है या नहीं—इसका निश्चय करना और यदि है तो उसे उचित शिक्षा देना यह कार्य, न्याय-दण्ड के अधिकारी, राजा का है।

शंख—मेरी तो यह राय है कि छोटे छोटे कार्यों में भी राजा के पास प्रार्थना लिये हुए दौड़े जाना राजा को कष्ट देना है—निरी अराजकता है। अन्त में राजा ने भी किया क्या? एक बड़ी लम्बी प्रतिज्ञा की और उसे मारने की ठान ली। मैं यहाँ के यहीं उसकी गरदन दबा देता और वह मर जाता—झगड़ा मिटता।

शशि—नहीं, यह तुम्हारा कार्य नहीं है। तुम्हारा कार्य है—अभ्यास करना, पुस्तकें पढ़ना, गुरूजी की आज्ञा मानना। गुरूजी जो कुछ कहें उसे सत्य समझना, और अपनी पाठशाला और निवास-स्थान के बाहर की बातों की ओर लक्ष्य नहीं देना।

शंख—यह कैसे हो सकता है? ईश्वर ने हमें आंखें दी हैं, कान दिये हैं, हृदय दिया है और सोचने के लिए बुद्धि दी है। इनका पूरा उपयोग न लेना नास्तिकता है। फिर हम सब बातों की ओर क्यों न ध्यान देवें?

शशि—'एकहि साधे सब सधें'। तुम विद्याभ्यास करो। बिना विद्या के संसार में कुछ भी नहीं कर सकते।

शंख—झूठ, साफ झूठ। बिना बल के तुम संसार में कुछ नहीं कर सकते। तुम्हीं सोचो, कृष्ण भगवान ने जो प्रण किया उसमें किस विद्या की आवश्यकता थी। यदि उनके हाथ में चक्र सुदर्शन न होता, भुजा में बल न होता, यादव सेना न होती और दाँव-पेंच की चालाकी न जानते होते, तो महाराज, वह प्रण ताक में रक्खा रह जाता। या, यदि वह चित्रसेन स्वयं बलशाली होता तो कृष्ण भी प्रण करने के पहिले दो बार सोच लेते; (दो उँगलियें दिखाते हुए) दो बार।

शशि—अरे भाई, सब बलों में विद्या-बल श्रेष्ठ है।

शंख—नहीं, मैं यों कहूँगा कि सब विद्याओं में बल-विद्या श्रेष्ठ है। इसी का हमें अभ्यास करना चाहिये। इस विद्या को पाणिनि और अमर नहीं सिखा सकते। इसको तो विश्वामित्र परशुराम, भीष्म, द्रोणाचार्य,

अर्जुन, और हां, श्रीकृष्ण ही सिखा सकते हैं। तुमने व्याकरण के अनुसार 'शुद्ध जल ला' कहना तो सीख लिया किन्तु, 'शुद्ध जल लाना' सीखने में शारीरिक बल की आवश्यकता पड़ती है।

शशि—शंख दादा आज तो बड़े तत्वज्ञानी की सी बात कहते हो?

शंख—मैं सत्य ही आज गम्भीर होरहा हूँ। तुम बार बार पुस्तक का नाम लेते हो तो मुझे चिढ़ आती है। अक्षरों की पुस्तक के पीछे तुम इस प्रकृति की पुस्तक को भूले जाते हो। तुम विद्वान् होजाओगे सही, किंतु शारीरिक दिवालिया होकर संसार में प्रवेश करोगे।

शशि—मैं यह नहीं कहता कि शरीर की ओर बिलकुल ही ध्यान न दिया जावे। किंतु मैं तुम्हारी बात मानने के लिए भी तैयार नहीं कि शारीरिक उन्नति की ही ओर लक्ष्य दिया जावे, यहां तक कि परिणाम में बुद्धि बौनी रह जाय।

शंख—तो तुम क्या मुझे मूर्ख समझते हो? ज़रा सँभल कर उत्तर देना, नहीं तो मुझे तुम्हारा बध करना पड़ेगा।

शशि—शंख और प्रतिज्ञा—इन दोनों का योग कब से होने लगा। मैं तो रोज़ तुम्हें प्रतिज्ञा करते सुनता हूँ कि आज से अभ्यास नियमित रूप से किया करूंगा। किन्तु, शायद वह प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए नहीं की जाती।

शंख—अबकी बार मैं सच कहता हूँ—

> यदि पढ़ने की बात कहोगे, पोथी फाड़ जला दूँगा।
> क़लम तोड़ दावात उलट, स्याही सब तुम्हें पिला दूँगा॥

करो शिकायत गुरु जी से, तो फ़ौरन दाब गला दूँगा।
यह विद्या की ऐंठ शान, मिट्टी में सभी मिला दूँगा ।।
है प्रण यह शंखाचार्य का, लो सुनो दण्ड बैठक धड़े ।
करदूँ शशि गुरु घण्टाल का, अभी यहां बध खड़े खड़े ।।

शशि—और यदि मैंने क्षमा मांग ली तो ?

शंख—तो क्षमा भी कर दूँगा ।

शशि—अच्छा तो क्षमा मांगता हूँ । मैंने भूल की जो आपकी हितकामना से मैंने विद्याभ्यास के विषय में कुछ कहा । मैं इस भलाई का अपराधी हूँ ; उसके लिए महाराज क्षमा कीजिए ।

(नेपथ्य में) शशिभूषण, अरे शशिभूषण ।

शशि—आया गुरुदेव । (शशि जाता है)

शंख—अच्छा जा, तुझे क्षमा करता हूँ । (स्वगत) शशि की बातें कुछ कुछ मेरे गले उतरती हैं, किन्तु वैसी मेरे गले से निकलती नहीं । बार बार मेरे घूँसे और बल की गर्वोक्ति को सहन करते हुए वह सदा ही नम्रता से मुझे पढ़ने लिखने का उपदेश दिया करता है । किन्तु देखूँ, क्या सत्य ही यह शरीर (अपने अङ्गों की ओर देखता है) कोश और व्याकरण के लिए उत्पन्न हुआ है ? काव्य और अलङ्कार मुझे रिझा नहीं पाते । यहां तो अखाड़ा भाता है । अब चलूँ । मेरे लिए मुग्दर व्याकुल हो रहे होंगे ।

(जाता है)

चतुर्थ दृश्य ।

(स्थान–इन्द्र-सभा । वृहस्पति, अग्नि, वरुण, कुवेर, चन्द्र इत्यादि देवता यथास्थान स्थित हैं, मध्य में सिंहासन खाली है ।)

(सेवक का प्रवेश)

सेवक—जय जय जय देवाधिराज, सुरनर समाज अति वन्दनीय ।
जलधर समाज अधिराज राज, जयविधि हरिहर अभिनंदनीय ॥
जय सुरेन्द्र देवेश
पधारिये भगवन् पधारिये ।

(इन्द्र का किन्नर और किन्नरियों के समेत प्रवेश ।)
सब सभा स्वागत के लिए उठती है । इन्द्र सिंहासन पर विराजते हैं ।
किन्नर और किन्नरियें नाच गान प्रारम्भ करती हैं ।)

आवो, सुरेश महाराजा के गुण गाव,—जय—जय—
उन्हें तन मन मुदित रिझाव, आव । आवो, सुरेश—
सुर स्वामी, शुचि स्वामी, छवि है अहा अपार !
गुणगण निधान, दल बल विधान, सुर गण प्रधान कहो वार वार
जय बोलो तन मन वार वार,
महिमा विलोक हिय हार हार,
सुप्रेमाञ्जलि चरणों डार डार,
मेघराज, अधिराजा के गुण गाव, जय जय । आवो—

(गाते हुए सब का जाना)

वृहस्पति—वज्री दलो दुर्जय दानवों को,
साहाय्य दो वासव मानवों को ।
ब्रह्माण्ड में यों सुर कीर्ति छाओ,
साफल्य, श्रीशक्र सदैव पाओ ॥

इन्द्र—कई दिवस उपरान्त आज है हुआ वसन्तोत्सव का अन्त,

राग रंग है थका, छका सा देववृन्द, है मन्द दिगन्त।

अपनी भर्राई कूकें सुन चकित कोकिला होती हैं,

गुरु छत्तों में मधुशय्या पर शिथिल मक्खियाँ सोती हैं।

पुष्पभार से झुके वृक्ष हैं, क्षण क्षण वायु ठिठकती है,

अति पराग से वन श्री सारी मुरझाई सी दिखती है।

आनन्द विनोद समाप्त हुआ, उत्सव के आह्लाद से हमारी शक्तियों में नवीन उमङ्ग आगई है, पूर्ण स्वास्थ्य, कार्य करने की स्फूर्ति बढ़ाता है। अब हम अपने राजकार्य की ओर मन फेरें। देवगण, यह वर्ष भगवान् वृहस्पति की राजनीति-कुशलता और आप सब की सहकारिता से सानन्द समाप्त हुआ। गत वर्ष के शासन-विवरण सुनाने के बाद नये वर्ष का कार्य प्रारम्भ हो।

वृहस्पति—महाराज,

होते हैं सब कार्य यहाँ के भिन्न मन्त्रियों द्वारा।

उनके ही मुख से सुनियेगा शासन-विवरण सारा॥

यमराज अपनो कार्य सुनाइये।

यमराज—(खड़े होकर) विश्व के न्याय-दण्ड की व्यवस्था अत्यन्त कठिन है तो भी, मेरे विभाग के कर्मचारी दृढ़ परिश्रम से सब कार्य बराबर चला रहे हैं। सभी सचराचर प्रकृति, नियमों का पालन मूक भाव से किया करती है, किन्तु मनुष्य नामक प्राणी, अपनी बुद्धि की

विशेषता और विचार तथा कार्य करने की स्वाधीनता के गर्व-मद से बहुत से नियमों का उल्लंघन करता है ।

इन्द्र—किस प्रकार ?

यमराज—मैं केवल मुख्य मुख्य बातें ही यहाँ पर कह सकता हूँ। क्रूरता, अत्याचार, छल कपट, द्रोह, ईर्षा, चोरी, व्यभिचार, असत्य, इत्यादि को तो उसने अपनाया ही है, किंतु इन दुर्गुणों की सहायता से उसने अनात्मवाद का भी प्रचार किया है, संसार और जीवन को केवल आनन्दोपभोग की ही सामग्री बनाने में उसने अपने प्रयत्नों की पराकाष्ठा कर दी है। ईश्वर को भुला रक्खा है। कोई कोई तो ईश्वर को भोले-भाले मनुष्यों को डराने का हौआमात्र मानते हैं। ऐश्वर्य की लालसा से एक राष्ट्र ने दूसरे देशों पर अधिकार जमाया है और उसका शासन इस ढङ्ग से करता है जिसमें अपना ही उदर भरे और उस परतन्त्र देश का नाश हो। छोटी छोटी जातियों ने पृथ्वी के आवश्यक से अधिक हिस्सों पर प्रभुत्व स्थापित किया है। कोई राष्ट्र विजय-श्री की महत्वाकांक्षा में सब संसार को अपने चरणों में झुकवाना चाहता है। फल यह होता है कि विजेता में गर्व, लोभ, क्रूरता, क्रोध इत्यादि की अधिकता होती जाती है और विजित जातियों में भीरुता, फूट, चरित्र-भ्रष्टता, अनाचारिता, कङ्गाली और कई प्रकार के रोग उत्पन्न होते जाते हैं।

इन्द्र—आप ऐसों को क्या दण्ड देते हैं ?

यम—देवराज, मैं सब महत्वाकांक्षी मदान्धों को आपस में लड़वाता हूँ ; आपसी डाह से युद्ध की अग्नि सुलग उठती है और उनका नाश होजाता है—जैसा कि अभी महा-भारत में हुआ ।

इन्द्र—और उन हतभाग्य पराजित देशों को किस प्रकार बचाते हो ?

यम—उन देशों में जो देश-द्रोही और झूठी राज-कृपा के भिक्षुक होते हैं उन्हें मृत्यु के बाद कुंभी पाक में डालता हूँ । उन देशों में अच्छे अच्छे विद्वान् और कर्मयोगी पुरुष उत्पन्न होते हैं ; वे संसार के कृत्रिम बंधनों को तोड़ प्रजा को राजनैतिक, सामाजिक इत्यादि अत्याचारों से मुक्त करते हैं । उनका जीवन कष्टमय बीतता है सही, क्योंकि राजा उन्हें तङ्ग करते हैं, स्वार्थी छलते हैं और साधारण लोग अविश्वास करते हैं—तो भी

देता हूँ मैं उन्हें सौख्यमय एक बड़ा सिंहासन ।
करते हैं वे देवलोक में आकर इसका शासन ॥

इन्द्र—यमराज, धन्य है आपकी सावधानी को (वरुण की ओर) कहिये जलदेव, आपके कार्यों का क्या हाल है ? मैंने सुना, पृथ्वी पर कहीं कहीं अकाल पड़ते हैं ।

वरुण—महाराज, यह अकाल की बात सत्य है, किन्तु उसका कारण वर्षा नहीं है । सृष्टि पर जितने जल की आवश्यकता है, मैं बराबर देता हूँ किन्तु अकर्मण्य, चाहे दरिद्र हों या धनिक मैं उनकी नहीं सुनता । जल पृथ्वी पर नियमानुसार गिर जाता है उसका उपयोग ले लेना चाहिये । किन्तु

मृत्युलोक में कुछ ऐसे नराधम हैं जो सीधा खेत में पानी चाहते हैं। मुझे भय है कि किसी दिन प्यास लगने पर वे अपने मुँह में ही पानी न मांगने लगें और कुबेर महाराज को आकाश से बनी बनाई रोटियां न बरसानी पड़ें। उसके विरुद्ध जो उद्योगी हैं वे अपने परिश्रमों का पूर्ण फल पाते हैं, पथरीली भूमि और बरफ़ीली ऋतुओं में रहते हुए भी स्वर्गीय सुख की सामग्री उपस्थित कर लेते हैं, किन्तु उपजाऊ देश और अनुकूल जलवायु भी निरुद्यमियों को दरिद्री ही बनाये रहती हैं।

इन्द्र—आपका कहना सत्य है। अब कुबेर जी अपनी व्यवस्था सुनावेंगे।

कुबेर—देवराज, मेरी वस्तु के उपयोग में लोग मदांध होजाते हैं, विचार-शक्ति को बिलकुल छोड़ बैठते हैं, अतः मुझे उन्हें शीघ्र ही धनहीन करना पड़ता है। जो यति और सन्यासी बन कर मेरे कोषों के डाकू बन गये हैं; जो धार्मिक संस्थाओं के धन के स्वयं मालिक बन बैठे हैं; जो सार्वजनिक क्षेत्रों में स्वार्थ की कामना करते हैं; जो संसार के गले काट कर बड़े हुए हैं; जो सुवर्ण के लिए धर्माधर्म का विचार नहीं करते; जो धन के लिए माता, पिता, भाई, कुटुम्ब, मित्र, देव, ईश्वर किसी को भी कुछ नहीं समझते; जो मेरी कृपा के रहते व्यसनों में मस्त, विषयों के दास और पापों के पुजारी बने रहते हैं; जो मेरे लिए अपनी जाति और मातृ-भूमि के प्रति विश्वासघात करते हैं; जो मेरी मस्ती की नशीली आँखों

से संसार के महा-पुरुषों को नहीं पहचानते; जो मेरे लिए बड़े से बड़ा पाप कर सकते हैं; वे नहीं जानते कि मेरी माया चार दिन की चाँदनी है। जानें क्यों ? वे तो उस दिन जानेंगे जिस दिन उनके हाथ में ठीकरा होगा, शरीर में बीमारियें होंगी, देश में दुष्काल होगा, राज्य में क्रांतियां होंगी और घर में होगा किसी महान आपत्ति का आक्रमण। उसी दिन उनकी मस्ती झड़ेगी, उनका नाश होगा। इसके विरुद्ध जिनके हृदय महान हैं, जिनके परिश्रम से प्रकृति काँपती है, जो सदा सोचा ही नहीं, कुछ किया भी करते हैं, जो अपने भोग में मेरी कृपाओं को न लगाकर उचित दान में उसका उपयोग लेते हैं, जो कृषि और व्यापार, कला-कौशल और भौतिक-विज्ञान, मितव्ययिता और दीर्घोद्योग किया करते हैं, साथही जिन्हें मेरा उपयोग ज्ञात है, उनके सामने मैं हाथ जोड़ कर खड़ा रहता हूँ; साक्षात् रावण ही क्यों न हो मैं उसकी सोने की लङ्का बन कर रहता हूँ।

इन्द्र—धनराज, आपका शासन अत्यन्त उत्तम है। किन्तु यह तो कहिये, उस मूर्ख और अयोग्य पुत्र ने कौन सा उद्यम किया है जो अपने करोड़पति पिता के धन, वैभव का स्वामी बन जाता है।

कुवेर—महाराज, इसमें मेरे प्रबन्ध का दोष नहीं, दोष है अपने को बुद्धिमान और स्वाधीन समझने वाले मनुष्य का। उसने किसी कारणवश ऐसे सामाजिक और राजकीय नियम बना रक्खे हैं जिनके कारण धूर्त और अयोग्य भी अपार सम्पत्ति के स्वामी बन सकते हैं और धनवान तथा ग़रीब का भेद-भाव सदा के लिए

दृढ़ होता रहता है। किन्तु आगे चल कर पृथ्वी पर समष्टिवाद का बल बढ़ेगा। लोग प्रयत्न करेंगे कि धनवान और धनहीन का भेद मिटे। सुवर्ण तथा ऐश्वर्य से दमकते हुए महल और पास ही में छप्पर-रहित झोपड़ी दिखाई न देगी; महल तोड़े जावेंगे, झोपड़ियाँ हवेलियों में परिणित की जावेंगी। धन और धरती का संसार के सभी मनुष्यों में बराबर बँटवारा होगा। सब सुख से रहेंगे। केवल धन के कारण किसी को बड़प्पन नहीं मिल सकेगा. क्योंकि एक के पास दूसरे से अधिक धन रहेगा ही नहीं।

इन्द्र—ठीक है; मनुष्यों में सुबुद्धि उत्पन्न हो और उनके समानता, स्वाधीनता और बन्धुता के प्रयत्न सफल हों।

(अग्नि-देव आप भी अपना वर्णन कीजिए)

अग्नि—मैं बड़वाग्नि रूप से समुद्र में रह कर, संसार के लिए मणि तैयार करता हूँ; दावाग्नि के रूप से अन्याय से उपार्जित करने वाले अत्याचारियों की सम्पत्ति जला कर भस्म कर देता हूँ; जठराग्नि रूप से मदान्ध और लोलुपों में मन्दाग्नि उत्पन्न कर उनका संहार करता हूँ और अकर्मण्यों को भूखा मार, उनका नाश करता हूँ; रणस्थल में अत्याचारियों और महत्वाकांक्षियों को भस्म करता हूँ।

इन्द्र—आपकी नाशक-शक्ति तो सब पर प्रकट है। कुछ पोशक-शक्ति के कार्य सुनाइये।

अग्नि—देवेश, मैं प्रसन्न होने पर वनस्पतियों को तथा प्राणियों को बढ़ाता हूँ; फल, अन्न इत्यादि उपजाता हूँ। मनुष्यों के खाने योग्य भोजन तैयार करता हूँ और उसे पचाता हूँ मेरे बल से संसार में उजाला है। जहां कहीं अत्याचार परम सीमा पर होने लगता है निर्बलों में भी मैं वह साहस और तेज भरता हूँ कि उनके सामने चक्रवर्ती सम्राट् भी काँप उठते हैं।

इन्द्र—धन्य अग्निदेव! धन्य।

(नेपथ्य में—जय जय देवाधिराज महाराज के दरबार में गन्धर्वराज पधारते हैं महाराज)

(प्रवेश चित्रसेन गन्धर्व का)

चित्रसेन—त्राहि त्राहि देव, शरणागत सेवक की रक्षा कीजिये महाराज!

इन्द्र—यह क्या चित्रसेन जी, यह क्या? तुम्हारे राग-रङ्ग का ग्राहक कौन बन बैठा?

चित्रसेन—प्रणत-पाल, महाराज, गत रात्रि को मैं कुटुम्ब सहित गङ्गा में जल-क्रीड़ा करने गया था। जब मैं लौट कर स्वर्ग को आ रहा था तब मेरे मुँह का उगला हुआ पान अभाग्य से श्री गालव ऋषि की अञ्जलि में जा गिरा। मुनिराज मेरे अपराध की क्रोध भरी सूचना भगवान् श्रीकृष्ण को दे आये। उन्होंने कल सूर्यास्त तक मुझे प्राण-दण्ड देने की प्रतिज्ञा की है। देव, आपके सिवाय मेरा कोई त्राता नहीं है। भगवन् रक्षा कीजिये।

इन्द्र—वाह ! तुझे लज्जा आनी थी । गालव ऋषि का तूने अपराध किया है और उनके तथा द्वारिकाधीश के विरुद्ध मुझसे क्षमा माँगने आया है ! केवल तेरे लिए अनेकों जीवों का नाश हमें इष्ट नहीं है ।

चित्रसेन—नाथ ! तो क्या मेरी आशा व्यर्थ हुई ?

इन्द्र—व्यर्थ ! मैं श्रीकृष्ण से युद्ध नहीं कर सकता । जाओ; अपने जीवन की रक्षा का और कोई उपाय करो या मरो ।

चित्रसेन—(जाते हुए—स्वगत)

हो सौ बार विश्व में हा हा ! अरी दासता तेरा नाश ।
इन मदांध-कठपुतलों में हो स्वामि-भक्ति का क्योंकर बास ।
धन्य वीर वे, रखते हैं जो अपना जीवन सदा स्वतन्त्र ।
फूँका नहीं किसी ने मुझ में जीवन का यह प्यारा मन्त्र ।

अब कहाँ जाऊँ ? किससे कहूँ ? क्या करूँ ? देवर्षि नारद को यह सम्वाद सुनाऊँ ।

(जाता है)

इन्द्र—(स्वगत) दुखी का दुख देख कर न पसीजे वह भी कोई हृदय है ? आश्रितों की रक्षा न कर सके वह भी कोई जीवन है ? मैं अपने कर्तव्य से भ्रष्ट होरहा हूँ । चित्त व्याकुल होता है । (प्रकट) देवगण, समय बहुत होगया, यह सभा विसर्जित हो ।

(सब का उठ कर जाना)

पाँचवाँ दृश्य।

स्थान—इन्द्रपुरी।

नारद—

असम्भव जग में है क्या कहो?

पृथ्वी पलट जायगी श्रम से, दृढ़ होकर बस रहो।
सत्कार्यों पर प्राण चढ़ाओ, निर्भय, हो या न हो;
कर्तव्यों में सब कष्टों से, दृढ़तर बन कर रहो।
सोचो ही मत, करते जाओ, सीधे सादे रहो;
प्रण पर अड़े रहो, हाँ, मुख से माधव माधव कहो।

क्या, इन्द्र अपनी भक्तवत्सलता का दिवाला निकाल देगा? वह देवराज है, देवराज बनने की शोभा भी इसी में है कि संसार में अत्याचार न हों। वह चाहे तो बहुत कुछ कर सकता है। किन्तु, यदि उसने सूखा उत्तर दिया तो, (कुछ सोच कर) ठीक है; पाण्डवों के सिवाय और कौन कृष्ण का मुक़ाबला कर सकता है?

(चित्रसेन का प्रवेश)

चित्रसेन—देवर्षि बचाइये। सब आशायें नष्ट हुईं, इन्द्र मेरी सहायता करने के लिए तैयार नहीं, अब क्या करूँ?

नारद—(स्वगत) एक तो दुखी यों ही व्याकुल रहता है तिस पर, यदि वह दास हुआ तो फिर क्या ठिकाना है? (प्रकट) चित्रसेन, डर मत, प्रयत्न करता जा; जा, अब तू समर-विजयी पाण्डवों की सभा में जा और उनसे आश्रय की प्रार्थना कर, वे तुझे कभी निराश न लौटावेंगे।

चित्रसेन—जो आज्ञा महाराज।   (जाता है)

नारद—वाह रे नष्ट संसार! जब प्राण लगाकर सेवा की तब अच्छा लगता रहा। अब रक्षा का समय आया तो स्पष्ट इनकार।

जो न दुखी के दुख को बाँटे ऐसे हृदयों को धिक्कार!
आश्रित की रक्षा न करें जो ऐसे नीचों को धिक्कार!
अत्याचारों का दृढ़ हो कर हटा न सकते जो अधिकार!
क्यों न इन्द्र से होवें, उनको—गिनकर लाख बार धिक्कार!

कैसा समय है! बली के कोप से सब अपना जी चुराते हैं, किन्तु,—

मैं इस पथ से नहीं हटूँगा, अत्याचार हटाऊँगा।
नहीं डरूँगा हरि के भय से, उनका गर्व गिराऊँगा॥
किन्तु शीघ्रता नहीं करूँगा, धीरे से सब साधूँगा।
उन्हें हराऊँगा, पर उनके पद-पंकज आराधूँगा॥

अच्छा अब देखता हूँ, पांडव इस कसौटी पर कैसे ठहरते हैं; चलूं—

दानवकुल-निशि-पतंग जय जय।
खलदल पंकज मतंग जय जय॥
जल-थल-अनिल-अनल-नभमय नव।
जग-उपवन-सुविहंग जय जय॥

(जाते हैं)

(यवनिका पतन)

द्वितीयांक समाप्त।

तृतीयांक ।

प्रथम दृश्य ।

स्थान—द्रौपदी का महल ।

(द्रौपदी चित्र बना रही है)

द्रौपदी—(गुनगुनाती है) 'दुख हरो द्वारिकानाथ शरण मैं तेरी' (चित्र की ओर देखना) उफ़ ! कृष्ण, यदि तुम न होते तो यह कृष्णा कौरव सभा में—बस शब्द रुकते हैं, याद आते ही फिर से जी चाहता है कि उस युद्ध-भूमि में आग लगवा देऊँ। कौरवों की राख भी दुबारा जले। कृष्ण ! उस समय की तुम्हारी मूर्ति मुझे याद है। दुःशासन मेरा चीर खींच रहा था। बली पांडव निस्तेज बैठे थे। न सह कर मैंने आँख मीच ली थी। तुम्हारा ध्यान था। तुम दिखाई दिये। तुम्हारे वस्त्र अस्तव्यस्त थे। बदन घबराया हुआ था। श्वास फूल रही थी। शब्द रुक रुक कर निकलते थे। हाथ काँप रहे थे। कृष्ण तुम आये। मेरी लज्जा रही। वह चित्र मैंने कई बार खींचना चाहा, किन्तु मैं सदा असफल ही होती रही।

(अर्जुन का प्रवेश)

अर्जुन—(कुछ देर ठहर कर) द्रौपदी, आज किसके ध्यान में हो ? मैं भी सुनूं।

द्रौपदी—(चौंककर) नहीं, तुम नहीं सुन सकते।

अर्जुन—खैर । (चित्र की ओर देखकर) यह क्या ? आज तो तुम चित्र-लेखा हो रही हो । फिर तुमने वही वस्त्र-हरण का चित्र खींचा है ? इसे अब तो भूलो ।

द्रौपदी—महाभारत में कटे हुए कौरवों के रक्त ने इस वस्त्र-हरण को तो भुला दिया, किन्तु मैं, अपनी लज्जा को बचाने वाले कृष्ण को कैसे भूल सकती हूँ । महाराज आप बतलाइये, भला कृष्ण इस समय क्या करते होंगे ।

अर्जुन—वे भी वस्त्र-हरण की रक्षा का चित्र बना रहे होंगे ।

द्रौपदी—चलिये, आप तो हँसी करते हैं ।

अर्जुन—तो रहने दो । देखूं तुम्हारा चित्र ।
(चित्र को सामने रखकर) वाह ! चित्र बहुत ही सुन्दर बना है । चित्त चाहता है कि बनाने वाले का हाथ चूम लूं ।

द्रौपदी—बस ?

अर्जुन—उसे हृदय से लगा लूं ।

द्रौपदी—(कुछ लज्जित होकर) मैं तो समझी थी कि कुछ इनाम देंगे ।

अर्जुन—अच्छा यह लो (एक पत्र निकाल कर देता है) अब तो प्रसन्न हुई ?

(कृष्णा पत्र खोलकर पढ़ती है । पढ़ते पढ़ते मुस्कुराती है)

अर्जुन—क्यों, क्या मिश्री सी घुल रही है ? जरा मैं भी चखूं ।

द्रौपदी—कृष्ण अन्त में लिखते हैं । कृष्णे मेरी ओर से अर्जुन का चुंब······न ले लेना ।

अर्जुन—लो, अब यहाँ लेने के देने पड़े ।

(भीम, नकुल, सहदेव का प्रवेश)

भीम—अर्जुन, यह खबर आई है कि दादा युधिष्ठिर तीर्थ-यात्रा से अभी पन्द्रह दिन और नहीं लौटेंगे। चलो, मौज रहेगी। वे रहते हैं तो धर्म, दान-पुण्य, यज्ञ इत्यादि से फुरसत ही नहीं मिलती। आनन्द विनोद के लिए जी तरसता है।

द्रौपदी—ठीक है, तो आज क्या प्रस्ताव होता है?

अर्जुन—मेरी राय है कि उद्यान-विहार के लिए चलें।

सब—यही हो।

द्रौपदी—यहाँ थोड़ी देर तो बैठिये। तब तक मैं दासी से सब योजना करवाती हूँ। (सब बैठते हैं)

अरी कोई है यहाँ?

(दासी का प्रवेश)

दासी—जी महारानी, आज्ञा?

द्रौपदी—हम लोग उद्यान-विहार को जावेंगे। सवारी की व्यवस्था शीघ्र करवाओ।

(दासी जाती है। दूसरी दासी का प्रवेश)

दासी—महारानी जी, इन्द्रलोक से चित्रसेन गन्धर्व आये हैं; महाराज के दर्शन करना चाहते हैं।

अर्जुन—अच्छा, उन्हें भीतर आने दो।

(दासी जाती है)

भीम—चलो, ठीक समय पर आये। गायन होगा, कुछ समय आनन्द से कटेगा। (चित्रसेन का प्रवेश)

चित्रसेन—त्राहि! पांडव-राज, शरणागत हूँ, रक्षा कीजिये।

(अर्जुनादि चकित होकर अपने आयुध सँभालते हैं)

अर्जुन—तुम किसके सताये हुए हो चित्रसेन ?

चित्रसेन—देव, मेरे मुख का शुष्क पान मुनिराज गालव की अञ्जलि में गिर गया। ऋषि की इस सूचना पर भगवान् कृष्ण ने कल संध्या तक मुझे प्राण-दण्ड देने की प्रतिज्ञा की है। मैं आप की शरण में हूँ—रक्षा कीजिए।

द्रौपदी—भगवान् कृष्ण ने !

अर्जुन—समस्या विकट है। अच्छा, तुम बाहर जाकर ठहरो। विचार करने के पश्चात् उत्तर दिया जावेगा।

(चित्रसेन जाता है)

द्रौपदी—चित्रसेन ने अपराध अवश्य किया है।

अर्जुन—हां, अपराध तो अवश्य है; किन्तु उसके लिए दण्ड अत्यन्त कठोर है, यह अत्याचार है।

भीम—सरासर अन्याय है। एक ग़रीब को इस प्रकार सताना उचित नहीं। वह हमारी शरण में आया है। हम उस की रक्षा करेंगे।

क्षात्र धर्म का तत्व यही है आश्रित जन के प्राण बचाना।
चाहे इसमें सब कुछ जावे यद्यपि पड़े हमें मर जाना॥
हम पाण्डव सामर्थ्यवान् हैं इसे अभय का दान दीजिये।
क्षत्रिय कुल न कलंकित होवे ऐसा ही कुछ कार्य कीजिये॥

अर्जुन—किन्तु प्रसंग कठिन है।

भीम—

छिः छिः, मा का दूध लजेगा, कठिन प्रसंग बताते हो क्यों।
वीर-वंश में पैदा होकर कायर भाव जताते हो क्यों॥
आज्ञा दो हिमशैल उठालूं अभी कृष्ण पर जाकर छोड़ूं।
भूल जायगा प्रण-वण सारे उसके ऐसे कान मरोड़ूं॥

द्रौपदी—आप वीर और बली हैं, यह सब संसार जानता है; किन्तु वीरता और बल के पीछे धर्मनीति को नहीं भुलाना चाहिये। श्रीकृष्णचन्द्र से पाण्डवों की कितनी घनी मित्रता है इसको आप जानते हैं, स्वयं अर्जुन अनुभव करते हैं और मैं जानती हूँ। कृष्ण थे और हमारे सन्मुख महाभारत था। क्या, एक प्रसंग है जो मैं गिनाऊँ? कृष्ण के उपकारों से हम कभी भी उऋण नहीं हो सकते। इस अनन्त उपकार और मैत्री में युद्ध का ताण्डव उपस्थित करना, और वह भी एक तुच्छ व्यक्ति के लिए, मुझे तो उचित नहीं मालूम होता।

भीम—तो क्या वह मरने के लिए निराश्रित छोड़ दिया जाय? मित्रता के पीछे क्षात्र-धर्म को तिलाञ्जलि दी जाय?

सहदेव—नहीं,

अंगुली गिन गिन गणित लगाया कहिये इसका होगा कैसा।
योग लग्न ग्रह सब कुछ साधे उत्तर है जैसा का तैसा॥
चित्रसेन के प्राण बचेंगे, पाण्डव उसे बचावेंगे।
ज्योतिष में यह फल निकला है क्या न ध्यान में लावेंगे॥

द्रौपदी—ज्योतिष! ज्योतिष मूर्खों को बहकाने की एक छल-विद्या है। राजनीति के दाँव चन्द्र सूर्य की गति देखकर नहीं चले जाते. किन्तु ये राज्य के सारे मानवों के अभ्युत्थान या पतन का विचार करके चले जाते हैं।

सहदेव—नहीं, ज्योतिष झूठ नहीं होसकता। मैं फिर कहता हूँ:-

चित्रसेन के प्राण बचेंगे, पाण्डव उसे बचावेंगे।

भीम—

उसको विश्व न मार सकेगा जिसको हम अपनावेंगे ।

द्रौपदी—आपको इस समय यह भी विचारना चाहिये कि चित्रसेन आपकी प्रजा है या नहीं। जब वह हमारी प्रजा नहीं तो उसकी रक्षा करना हमारा कर्तव्य नहीं। वह इन्द्र का सेवक है, इन्द्र ही उसे बचावेगा। दूसरे, श्रीकृष्णचन्द्र के राज्य में उसने अपराध किया है उनका राजधर्म है कि वे उसको दण्ड देवें। आप लोग क्यों हस्तक्षेप करते हैं ?

भीम—यह हमारी शरण में आया है। हम क्षात्रधर्मानुसार उसे अभय-दान देवेंगे।

द्रौपदी—इस अभय-दान का असर प्रजा पर बहुत बुरा पड़ेगा। प्रत्येक व्यक्ति बिना डरे अपराध करने लगेगा, इस आशा से कि पांडव प्रार्थना करने पर अभय-दान देवेंगे ही। एक बात और है। आपको याद होगा कि महाराज युधिष्ठिर ने यात्रा को जाते समय क्या कहा था ?

भीम—नहीं, मैं नहीं जानता।

द्रौपदी—वे कह गये थे कि जब तक मैं न लौटूँ तबतक किसी से युद्ध न ठानना। यह चित्रसेन कल ही मारा जानेवाला है और अभी आपने सम्वाद सुनाया कि महाराज युधिष्ठिर पन्द्रह दिन तक लौट नहीं सकते। इसलिये आप राजाज्ञा मान चुप रहिये।

भीम—(झुंझलाकर) हाय, राजाज्ञा—

जिसने जीवन भर करवाये हम पर लाखों अत्याचार ।
नहीं भूलती हो तुम अबतक उस 'आज्ञा' का यह व्यवहार ॥

अरे, तोड़ दो, क्यों रखते हो, रक्खो आश्रितजन के प्राण ।
क्षत्रिय नाम कलङ्कित होगा, जो न करोगे उसका त्राण ॥

अर्जुन—दादा ! ठहरो—

डूबता यद्यपि हमारा कर्म है ।
मान लो आज्ञा इसी में धर्म है ।
आज तक हम मान देते ही रहे ।
दुःख भोगे जान देते ही रहे ।

भीम—

किन्तु यह सब कायरों का काम है ।
पाण्डवों का नाम सब बदनाम है ॥
छोड़ते हो आज क्षत्रिय धर्म को ।
ले रहे हो आज कायर कर्म को ॥

इस व्यवहार से मुझे दुःख होता है ।

अर्जुन—दादा, दुःख तो मुझे भी है, पर एक ओर कृष्ण और दूसरी ओर यह चित्रसेन, फिर तिस पर यह राजाज्ञा; बस बस, यही उत्तर निकलता है कि चित्रसेन को अपना भाग्य और कहीं आज़माने दो ।

(दासी का प्रवेश)

दासी—महाराज उद्यान-विहार के लिए वाहनादि उपस्थित हैं ।

द्रौपदी—चलिए महाराज; (दासी को) सुलेखा, जाओ बाहर चित्रसेन जी से कह दो कि महाराज युधिष्ठिर यहां पर नहीं हैं, इसलिए हम लोग उनके लिए कुछ नहीं कर सकते । (सब जाते हैं)

द्वितीय दृश्य ।

स्थान—मार्ग

(वीणा-पाणि मुनि का प्रवेश)

नारद—(गाते हैं)—

नीति की भागीरथी में तैर लूँ अब आज ॥
शासकों के साज तोड़ूँ, कायरों की लाज तोड़ूँ;
गर्वियों के राज तोड़ूँ है यही मम काज ॥ आज० ॥
क्यों न कर्म कठोरतर हो, क्यों न मम रिपु विश्व भर हो;
कूद जाऊँगा निडर हो, सजूँगा शुभ साज ॥ तैर लूँ ॥
हाय सेवा-व्रत कड़ा है, पूज्य गौरव भी बड़ा है ।
उसी में यह सिर अड़ा है, छोड़ आदर लाज ॥ तैर लूँ०॥
दुःखितों का त्राण होगा, तभी तन में प्राण होगा ।
उलट दूंगा विश्व भर को, नीति से मैं आज ॥ तैर लूँ० ॥

हृदय, ठहरो ठहरो !

"दानवकुल-निशि-पतङ्ग जय जय ॥"

पाण्डव अश्रित की प्राण-रक्षा से कभी पीछे नहीं हटेंगे, ऐसा मुझे विश्वास है—

"दानवकुल-निशि-पतङ्ग जय जय ॥"

बिलम्ब बहुत हुआ, यह भी सिद्धि ही का लक्षण है । अहा हा ! जिस समय अर्जुन और कृष्ण दोनों अड़ेंगे, तब बड़ा ही आनन्द आवेगा ।

"दानवकुल—निशि—पतङ्ग जय जय ॥"

(चित्रसेन का प्रवेश)

अरे यह भी तो आ गया। क्यों चित्रसेन पौ-बारह !

चित्रसेन—(व्याकुलता से) नहीं महाराज ।

नारद—अरे ! क्या, पाण्डवों ने भी तेरी प्रार्थना स्वीकार नहीं की ? क्या कहा उन्होंने ?

चित्रसेन—'महाराज युधिष्ठिर यहाँ पर नहीं हैं अतएव उनकी अनुपस्थिति में हम तुम्हारी सहायता नहीं कर सकते।'

नारद—चित्रसेन, बुरी बात है (कुछ रुक कर) संसार में तुम्हारा कोई साथी नहीं।···पर घबड़ाओ मत। मैं चाहता हूँ यदि तुम मरो भी तो कृष्ण के चक्रसुदर्शन से नहीं। जिसने पैदा होकर शत्रुओं के हृदय में शूल न पैदा किया, उनके मन्सूबे मिट्टी में न मिलाये और उनकी व्यवस्थायें नष्ट-भ्रष्ट न करदीं, उसकी माँ को गर्भ-धारण के लिए रोना चाहिये। देखो, कृष्ण के सुदर्शन-चक्र से मरने के पहले ही तुम एक चिता तैयार करो और वहां जाकर अपनी स्त्री के सहित बैठ अपने शेष जीवन में दुःखों के आँसू बहाओ; रोकर हृदय ठण्डा करो; और जब कृष्ण मारने आवें तब अग्नि में कूद कर जल मरो। देखो, कृष्ण को पछताना पड़ेगा कि मेरी प्रतिज्ञा पूरी नहीं हुई। (कुछ सोच कर) और, हां, एक बात सुनो, यदि तुमसे कोई दुःख का कारण पूछे तो उसी से कहना कि जिस में दुःख हटाने की सामर्थ्य है उसी से हम कहते हैं, कृपाकर जाओ, हमारा समय नष्ट न करो। और यदि कोई अपनी

सामर्थ्य जतावे तो तुम उसे प्रतिज्ञाबद्ध कर लेना। (चित्रसेन जाता है) और सुनो, तुम अपनी चिता गंगा किनारे महाकाल घाट पर बनाना। (चित्रसेन चला जाता है)......पाण्डव भी छूछे निकले, ...किन्तु मेरी नई युक्ति सध गई तो कृष्ण की प्रतिज्ञा मृग-जल हो जावेगी। सत्ता-धारियों की बुद्धि ठिकाने आ जायगी। अत्याचारियों की आंखों की अंधेरी हट जायगी और अविचारी प्रतिज्ञा-वादी अपना सिर सदा के लिए नीचा कर लेवेंगे।

दानवकुल-निशि-पतंग जय जय।
खलदल पंकज मतंग जय जय॥
जल-थल-अनिल-अनल-नभ-मय नव।
जग-उपवन-सुविहंग जय जय॥

मैं अब सुभद्रा के पास चलता हूँ, उसे साधूं।

(नारद गमन)

तृतीय दृश्य ।

स्थान—तपोवन ।

(शंख और शशि झगड़ते हुए आते हैं)

शशि—तुम बड़े झगड़ालू हो।

शंख—तुम बड़े दब्बू हो, और दब्बू होना झगड़ालू होने से कहीं अधिक बुरा है।

शशि—पर झगड़ालू होना बुरा ज़रूर है। इस लिए मैं कहता हूं कि शान्ति से कार्य किया करो। यह तो तुम भी मान गये

हो कि चित्रसेन ने अपराध जान-बूझ कर नहीं किया और दूसरे, इसको जो दण्ड मिल रहा है वह बहुत भयङ्कर और अनुचित है ।

शंख—हाँ, यह मैं मानता हूं और गुरुजी तथा श्रीकृष्ण दोनों अन्याय कर रहे हैं ; गुरुजी हठी हैं और श्रीकृष्ण घमंडी । इन दोनों का नाश हो । यदि तुम कहो तो दोनों का वध कर डालूँ ।

शशि—अब मैं कुछ तुम्हारे विरोध में कहने लगूं तो तुम मुझे दब्बू कहोगे । तुम ही सोचो, क्या गुरुजी और राजा के प्रति ऐसे वाक्य मुंह से निकालने चाहिए ?

शंख—क्यों नहीं ?

शशि—अरे दादा, गुरु और राजा के प्रति सदैव भक्ति रखनी चाहिए । यदि उनका विरोध भी करना हो तो नम्रता और प्रार्थना पूर्वक ।

शंख—तुम्हें तो भाई ईश्वर ने यदि जुड़े हुए हाथों वाला उत्पन्न किया होता तो तुम प्रसन्न रहते । मैं एक बार समझ लं कि फलाना मनुष्य बुरा कर रहा है तो उसका नाश बिना किये न छोड़ूं ।

शशि—बस मुझ में और तुम में यही अन्तर है । तुम उस मनुष्य का नाश करना चाहते हो और मैं उसकी बुरी प्रवृत्ति का । इस लिए चलो नम्रता-पूर्वक गुरुजी से निवेदन करें कि उस बिचारे गंधर्व को क्षमा कर दें ।

शंख—बिलकुल क्षमा ?

शशि—नहीं तो और क्या ? मृत्यु निकट जान उसे जो कष्ट हुआ होगा वही काफी है ।

शंख—नहीं, उसका वह विमान छीनना चाहिये । रोज़ उसमें ईंधन पानी आदि भर कर लाया करेंगे ।

शशि—चलो, रहने दो अपनी ये स्वार्थी बातें । (दोनों जाते हैं)

चतुर्थ दृश्य ।

स्थान—सुभद्रा का महल ।

(सुभद्रा गा रही है)

हो न वियोग किसी से किसी का ऐसा उपाय करो
जगत में ऐसा उपाय करो ।

प्रिया निशा को चन्द्र न छोड़े,
लतिकाश्रय द्रुम भूल न तोड़े,
विमल प्रेम से मुख नहिं मोड़े,
जो निर्दय हों उनको रोको, शुभ है तुम न डरो ॥जगत०॥

जीवननाथ न जाने पावें,
पल न वियोग सताने पावें,
नयन न नीर बहाने पावें,
हृदय न दुखे, रुके मत साहस, प्रिय के लिए मरो ।। जगत० ।

थोड़ा हो या अधिक, वियोग वियोग ही है । वह सदैव असहनीय होता है । वे अभी तक नहीं आये इसलिये मेरा जी न जाने कैसा हो रहा है । आज यहां से जाते समय कह गये थे

कि प्रासाद-शिखर पर से चन्द्रोदय हम दोनों साथ साथ देखेंगे। मैं उनकी मार्ग-प्रतीक्षा करती रही। चन्द्र का उदय भी हो चुका और वह मानों मुझ अकेली को ताना मारने के लिए खिड़की में से स्वयं मन्द हास करता हुआ आ रहा है। किन्तु, चन्द्र, मेरा कुछ दोष नहीं, महाराज पार्थ नहीं आये। पर यह वीणा की ध्वनि कहां से ? ऐं, फिर बजी। (नारद का, 'दानव-कुल-निशि पतंग जय जय' गाते हुए प्रवेश)

सुभद्रा—भगवान् देवर्षि के चरणों में प्रणाम।

नारद—भद्रे, सौभाग्य विजयिनी हो। आज अभी तक सोई नहीं ? रात्रि बहुत गई, जाग रही हो, क्या इस निद्रा-भंग का कोई विशेष कारण है ?

सुभद्रा—कुछ नहीं महाराज, यों ही जाग रही थी। नींद नहीं लगी।

नारद—वही तो मैं पूछता हूँ, नींद क्यों नहीं लगी ? हां, मैं समझा, कदाचित् तुम इसलिए जागती हो—

सुभद्रा—भगवान्, जानने की तो कोई बड़ी बात नहीं है। महाराज पार्थ घर में नहीं हैं, यही बेचैनी का कारण है। पर देव ! इतनी रात में आप यहाँ कहाँ ?

नारद—मेरे आने में सदा ही कारण नहीं हुआ करते। किन्तु भद्रे, आज ऊषाकाल में सौभाग्य-वर्धक पर्व है। मैंने सोचा था कि कदाचित् तुम उसी हेतु से गङ्गा-स्नान के लिए जाने की तैयारी करने को जागी होंगी। पर, हाँ अवश्य ही तुम लोग महाभारत में विजय पाकर विश्व-

विजयी होगये हो । अतः पर्वों की साधना से अब और क्या मिलना है, यह सोच कर कदाचित् तुम लोगों ने पर्वों का महत्व अब अपने हृदय से हटा दिया हो तो दूसरी बात है ।

सुभद्रा—ना महाराज, पाण्डव विजय पाकर नम्र हुए हैं, घमंडी नहीं । हमारे कुल में धार्मिक-साधनायें प्राणों से प्यारी मानी जाती हैं । भगवान्, मुझे इस पर्व का स्मरण ही नहीं था । आपने याद दिलाई, दया की । मैं अभी स्नान की तैयारी करती हूँ ।

नारद—तो मैं चलता हूँ, रात्रि का समय है । व्यवस्था ठीक करना ।

सुभद्रा—सेना साथ रहेगी । सम्पूर्ण राजकीय व्यवस्थाओं के साथ मेरे गङ्गा-स्नान के लिए कोई भय नहीं । महाराज, बड़ी दया हो यदि आप भी साथ रहें । आपसे पुण्य-कथायें सुनूंगी । हृदय पवित्र होगा ।

नारद—ठीक है, पर शीघ्रता करो ।

सुभद्रा—प्रबन्ध करती हूँ, देव ।   (दोनों जाते हैं)

पंचम दृश्य ।

स्थान–गङ्गा-तट ।

(चित्रसेन गन्धर्व, उसकी पत्नी, और दो बच्चे बैठे हुए विलाप कर रहे हैं । सामने एक चिता तैयार है)

चित्रसेन—मुझ अभागे ने अपने जीवन का नाश कर दिया । मैं विपत्ति में पड़ गया हूँ, किन्तु हाय ! मुझे कोई बचाने

वाला नहीं। संसार के लोग मुँह के बड़े मीठे होते हैं, पर मन के बड़े मैले। इस पापी संसार में ऐसा कोई बलवान नहीं रहा जो मुझे आश्रय देता, मेरी रक्षा करता। मैंने बड़ों बड़ों के दर्वाजे खटखटाये पर मेरे प्राण किसी ने न बचाये। मैं सोचता हूँ पृथ्वी में पाप, कपट, डरपोकपन और विश्वासघात के सिवाय कुछ भी नहीं है।

चित्र० की स्त्री—हा प्राणेश्वर! कितना सा दोष और कैसा दण्ड! पृथ्वी पर फिर अत्याचार उत्पन्न हो गया। प्रथम वह पापियों द्वारा बढ़ता था, अब पुण्यात्माओं द्वारा बढ़ रहा है; दुखों में जिन भगवान श्रीकृष्ण का स्मरण कर संसारी जीव उद्धार पाते हैं, वे ही गोपाल आज बिना कारण आप का बध करेंगे, और यह संसार खड़ा खड़ा यह अन्याय देखा करेगा—कुछ न करेगा—धिक्कार! संसार तुझे धिक्कार!! देव, जिस इन्द्रदेव की सभा के आप गायक थे, आप कहते थे कि मेरे गायन से इन्द्र पुलकित और प्रसन्न हो जाता है, वह मेरे लिए सब कुछ कर सकता है—हाय, देवताओं के राजा कहलाने वाले के कार्य भी निर्दयी-दानवों से बढ़कर निकले। स्वामि-भक्ति के पुरस्कार में प्राण-दण्ड हो रहा है! क्यों न हो, सामर्थ्य-

हीन मदान्धों के सेवक मारे जाते हैं, और मदान्ध-स्वामियों से कोई सहायता नहीं पाते। हाय! आज मेरे बच्चे बिलखेंगे। मेरे सौभाग्य का क्या ह्रास होगा? विश्वेश्वर! ऐसा न करो, न करो, न करो।

(नारद और सुभद्रा का प्रवेश)

नारद—(सुभद्रा से) अहा, पुण्यक्षेत्र कितना प्यारा होता है सुभद्रा। गङ्गा-तट पर आते ही जी पुलकित होने लगता है। अहा! देखो तो भगवती जाह्नवी कैसी कठोर लहरें ले रही हैं, मानों ससार से पाप को निर्वासित करने के लिए उग्र रूप धारण कर रखा है। शीतल जल कैसा अच्छा है जो संसार के सन्तप्त जीवों के हृदय शीतल कर देता है और उसमें भी आनन्द की बात यह कि जिन भगवान के चरणों से भगवती भागीरथी प्रकट हुई हैं, उन्हीं भगवान की भगिनी भी उसी भागीरथी में स्नान कर सौभाग्यवर्द्धक पर्व का पुण्य लूटेंगी। साथ ही सुभद्रा, मृत्युलोक में स्वयं भगवान् भी अपने चरणों से निकली हुई गङ्गा में स्नान कर पवित्र होते हैं। धन्य है गंगे! तुम्हें धन्य है।

सुभद्रा—देव, गङ्गा की महिमा महान् है। (रोने का शब्द सुन और चौंक कर) ऐं, यह क्या? कौन रो रहा है—किसी पर ऐसी भारी विपत्ति पड़ी है? यह तो किसी दुखिया की आवाज़ है।

नारद—(आपही आप) प्रयोग प्रारम्भ !!! (सुभद्रा से) होगा कोई ! संसार में क्या रोनेवालों का टोटा है ? मरे हुओं या मृत्यु के निकट पड़े हुओं के लिए, लोगों के पास एक ही सीधा उपाय है, और वह है रोना, पुकारना, चिल्लाना । तुम सौभाग्य-वर्धक पुण्य लूटने आई हो—तुम्हें इससे क्या ?

सुभद्रा—ठीक है महाराज ! पर यदि सुनने वाला न हो तो विधाता दुखी के हृदय में रोने की प्रेरणा ही क्यों करे ? और फिर इन बातों में है ही क्या ? दुखी दुख से रोता है;—विधाता ने जिसे कान दिये हैं, उसे चाहिए वह दुखियों का रोना सुने, और जिसे हृदय दिया है, वह उनके लिए कुछ करे । और आप ही की किसी आज्ञा के अनुसार केवल पुण्य की भावनायें तो ब्राह्मण जाति को शोभा देती हैं । मैं क्षत्रिय बालिका हूँ मुझे अपने क्षत्रियत्व का अभिमान है—मैं जाती हूँ—सुनूँगी उसके दुख की कहानी । आप के चरणों के प्रसाद से, वह करूंगी, जो मेरे पतिदेव की पवित्र मूर्ति मेरे हृदय में प्रेरणा करे ।

नारद—बाई तू जाने और तेरा काम जाने । तुझे जाना हो तो जा, सुन, और जो जी में आवे कर; मुझे न तो कान दिये है, और न हृदय; मुझे तो मुँह दिया है और उसमें ध्वनि दी है—वीणा उठाता हूँ—गोपाल के गीत गाता हूँ—बीच में गङ्गा की तरंगें चुटकियें बजावेंगी ।

सुभद्रा—यह देखिये, कितने दुख से भरा यह रोना है देव, कोई दीना है, अबला है।

(उधर जाती है)

गायन ।

(राग सोहनी)

(इधर)

नारद—

हे कर्म तेरी मूर्ति का, अन्तःकरण में स्थान है,
भगवान का अपमान हो, तेरा हृदय में मान है।
क्या क्या नहीं करना पड़ा, तेरे लिए इस विश्व में,
दिन रात जीवन-रागिनी, करती सदा ही गान है॥
इससे लड़ा, उससे भिड़ा; कलही बना, किस के लिए ?
तेरे लिए जीवन समर्पित है, हृदय में ध्यान है।
विज्ञान-पूर्वक भक्ति-मय हो विश्व में तव स्थापना,
संसार उठ, सत्कर्म कर, उठती निरन्तर तान है।
माधव, तुम्हारी ही दया है, शिशु तुम्हीं से लड़ रहा,
विश्वास है, निज से अधिक तुमको हमारा ध्यान है॥

(उधर)

सुभद्रा—कौन हो ? ऐसी रात में क्यों विलाप कर रहे हो ?

चित्रसेन—हैं कोई दुख के मारे, बेचारे। और रोते हैं इसलिए कि अब मरेंगे, और इसलिए मरेंगे कि संसार में दुखियों की रक्षा करने वाला अब कोई वीर नहीं रहा।

सुभद्रा—क्या कह रहे हो, कुछ होश रखकर बोलो, कहो तो तुम्हें क्या दुख है ?

चित्रसेन—है कोई दुख, जिसे हृदय जानता है। कोई उसे जान कर क्या करेगा ?

सुभद्रा—क्या करेगा ? उसे दूर करने का प्रयत्न करेगा।

चित्रसेन—विश्वास नहीं होता, मेरे दुख का दूर करने वाला संसार में नहीं दीखता।

सुभद्रा—बोलो, बोलो, मैं हूँ, तुम्हारे दुख दूर करूँगी, बोलो।

चित्रसेन—क्या मेरे दुख दूर करोगी ?

सुभद्रा—हां, तुम्हारे दुख दूर करूँगी।

चित्रसेन—क्या मेरे दुख दूर करोगी ?

सुभद्रा—हाँ, तुम्हारे दुख दूर करूँगी।

चित्रसेन—क्या यथार्थ ही मेरे दुख दूर करोगी ?

सुभद्रा—हां, तुम्हारे दुख दूर करूँगी, करूँगी, करूँगी—कहो—बोलो भी ता।

चित्रसेन—देवी, तुम कौन हो ? क्या मुझ असहाय की रक्षा के लिए स्वयं महाकाली अवतरित हुई हो ? देखो. मुझसे गालव ऋषि का अपराध हुआ है, मुझ अभागे ने, सूर्य को अर्घ्य देते समय, उनकी अञ्जलि में भूल से मुंह का पान डाल दिया। इसी अपराध पर भगवान् श्रीकृष्ण ने, (सुभद्रा चौंकती है) कल संध्या तक मेरा बध करने की प्रतिज्ञा की है; सो देवि उनसे मेरी रक्षा करो।

सुभद्रा—(स्वगत) हाय, बड़ी भूल हुई—भैया जिसका बध करेंगे; उसे मैं बचाऊँगी—हाय ! पर हृदय, घबराओ मत, एक दीन की प्राणरक्षा करना है, देखो—

आर्य स्त्रियां जो प्रण अनोखा कर चुकीं सो कर चुकीं,
वे धारणा संसार में जो धर चुकीं सो धर चुकीं।
वे भावना हृद्धाम में जो भर चुकीं सो भर चुकीं,
प्रण-पूर्ति होनी चाहिये अगणित सुभद्रा मर चुकीं।

(प्रकट) जाओ निःशंक रहो। (सुभद्रा चलती है और मन ही मन) पर कैसे ? यह प्रतिज्ञा कैसे सधेगी ? भगवान् नारद ही से पूछना चाहिए। (नारद के पास पहुँचकर) महाराज, भूल हुई, क्षमा कीजिए, अपराधिनी हूँ—

नारद—आओ 'क्षत्रिय-बालिका', दुख की कहानी सुन आई न, कहो तो क्या बात है ?

सुभद्रा—महाराज, कल चित्रसेन गंधर्व का बध हुआ चाहता था।

नारद—राम राम, अच्छा फिर ?

सुभद्रा—मैंने उसकी रक्षा की प्रतिज्ञा की है। और वह मुझ से भूल में हो गई महाराज।

नारद—अरे, राम राम, अरी तूने यह क्या किया देवि। सम्पूर्ण पर्व का आनन्द किरकिरा कर डाला। तुझे यह भी कुछ ज्ञात है कि स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने उसका बध करने की प्रतिज्ञा की है और स्वर्ग के राजा इन्द्र मना कर चुके हैं।

सुभद्रा—हाँ महाराज, सुन लिया है।

नारद—अच्छा सुन लिया है तो जाओ, आनन्द करो, पधारो। मैंने पहिले ही कहा था न, पर तू क्षत्रिय-बालिका ठहरी; किस की मानती।

सुभद्रा—महाराज, मेरा हृदय कहता है मैंने कोई अपराध नहीं किया, अतः अब कृपा कीजिये; ऐसी युक्ति बताइये, जिससे प्रतिज्ञा की पूर्ति हो। आपका मस्तिष्क संसार के उद्धार की युक्तियों का विहार-स्थल है देव।

नारद—हाँ, इतना तो मैं भी कह सकता हूँ कि किसी आश्रित की प्राण-रक्षा करना अपराध नहीं है। और युक्ति की पूछती हो सो तो मुझे कुछ मालूम नहीं। (ठहर कर) हाँ, अपनी वही कोप-भवन वाली क्रिया की इस समय साधना करो। यदि तुम में दृढ़ता हुई तो यह साधना तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी कर देगी।

सुभद्रा—अवश्य महाराज।

नारद—अवश्य की बात नहीं है। अर्जुन श्रीकृष्ण के भक्त और मित्र हैं—वे तुम्हारी कहाँ तक मानेंगे सो तुम जानो—यदि कोपभवन की तैयारी तीखी न रही तो चित्रसेन मरा समझो। नहीं तो गांडीव-धारी श्रीकृष्ण-सखा भारत जिसकी रक्षा के लिए खड़ा हो विश्व में उसे मारने की सामर्थ्य कौन रखता है?

सुभद्रा—देव, मैं प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिए आज रूठूंगी और जब तक कृष्ण-सखा स्वयं चित्रसेन के बचाने की प्रतिज्ञा नहीं करेंगे तब तक नहीं मानूँगी।

नारद—जो होगा सो प्रातःकाल कहेगा, अच्छा मुझे भी जाने दो, पर देखो, चित्रसेन को साथ ले जाओ, उसे छुपा देना और जब पार्थ तुम्हारी प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिए प्रण कर लें, तब तुम चित्रसेन को उनके सन्मुख खड़ा कर देना और कहना, 'भगवान् श्रीकृष्ण से इस चित्रसेन

की रक्षा हो', यही मेरी प्रतिज्ञा है। बस, फिर सब कार्य बनाना ।

सुभद्रा—(जाते हुए) देव प्रणाम—

नारद—विजयिनी हो—

'दानव-कुल-निशि-पतंग जय जय' ।

षष्ठम दृश्य ।

स्थान—ऋषि का आश्रम ।

(शंख और शशि का प्रवेश)

शंख—अहा, कैसा सुहावना समय है। मन्द मन्द झकोरों से फूल झुक झुक कर नाच से रहे हैं, पत्तियां लहराती हैं, वह दूर नदी भी तरङ्गित हो रही है। जी में आता है यहीं लेटे हुए कुछ मुंदी हुई आँखों से इस सौंदर्यामृत का पान करें।

शशि—अमृत-पान को छोड़ो, आज अमर के पारायण का समय हैं।

शंख—अरे इस समय जब कि वह मोर नाच रहा है ?

शशि—हां, वह तो नाचता ही रहेगा।

शंख—जब कि वह मृग-छौना उड़ान भर रहा है ?

शशि—रहने दो उसे।

शंख—जब कि ये तितलियां छियाछी खेल रही हैं ?

शशि—देखो व्यर्थ बातें न बनाओ।

शंख—और यह (नेपथ्य से कुहू कुहू की आवाज़ होती है) कोयल! हायरे अमर, तुम अमर क्यों हुए, अब तो कभी भी तुम से पिण्ड नहीं छूटेगा ।

शशि—अच्छा मैं तो पारायण करने बैठता हूँ। तुम रोते रहो अमर के नाम से ।

(शशि बैठता है और शंख भी। शशि अमरकोष के श्लोक पढ़ना प्रारम्भ करता है)

शशि—यस्य ज्ञान दयासिंधो,

शंख—पुस्तक पढ़ हुआ अंधा,

(शशि ज़रा क्रोध से शंख की ओर देखता है। शंख नीचे देखता हुआ मुस्कराता है)

शशि—रगाधस्यानघा गुणाः ।

शंख—लगा धक्का कि जा पड़ाः ।

(शशि फिर शंख की ओर देखता है। शंख भी उसकी ओर देखता है ।)

शशि—सेव्यतामक्षयो धीराः ।

शंख—सेवको मक्खियाँ धीरे ।

(शंख मुँह पर से मक्खियां उड़ाने का नाट्य करता है और शशि क्रोध-भरी मुद्रा से उसकी ओर घूरता है)

शशि—स श्रिये चामृताय च ।

शंख—सुसरिये चाम खाय च ।

(शशि उंगली उठा कर मना करने का इशारा करता है। शंख दो उंगलियें उठाता है ।)

शशि—भेदाख्यानाय न द्वंदो ।

शंख—बेंतें खाना है या डंडा ।

शशि—चुप रहो शंख—

नैकशषो न संकरः

शंख—नेक ठहरो न तंग करो । (हाथ से मना करता है)

शशि—अरे भाई मुझे अमरकोष रटने दो ।

शंख—अरे भाई मुझे अपना अमर-काव्य रचने दो ।

शशि—कृतोऽत्र भिन्न लिंगाना ।

शंख—कुटा कर भंग, चिलम् गांजा ।

शशि—नहीं मानते ?—

मनुक्तानां क्रमाद्वते ।

शंख—नशा पानी जमा धरते ।

शशि—अब गड़बड़ मचाई तो ठीक नहीं ।

शंख—अच्छा क्षमा करो ।

शशि—त्रिलिंग्यां त्रिष्विति पदं

शंख—त्रिलिंग्यां त्रिष्विति पदं,

शशि—ठीक !

मिथुने तु द्वयोरिति

शंख—मिथुने तु द्वयो रति ।

शशि—फिर तुमने शरारत की ?

निषिद्धलिंगं शेषार्थं,

(शंख कुछ नहीं बोलता है)

शशि—बोलो न ?

शंख—निषिद्ध बात हम नहीं बोलते ।

शशि—त्वन्ताथादि न पूर्वभाक्

शंख—तनता था दिन फूट भर ।

शशि—(झुंझला कर हँसता हुआ) दिन कैसे तन सकता है ?—
　　स्वर्व्ययं स्वर्गनाक,

शंख—स्वर्ग की नाक कहां से आई ?

शशि—मैं गुरुजी से शिकायत कर दूंगा । पढ़ने नहीं देते, आप
　　जैसे मूर्ख हैं वैसे ही दूसरों को भी बनाना चाहते हैं ।

शंख—जा शिकायत कर दे । गुरुजी क्या मेरा······?

शशि—क्या ? (मारने दौड़ता है)

शंख—प्राण ले लेंगे ।

शशि—गुरुजी की दुहाई है ! (शशि को एक चपत जमाता है ।
　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　शशि गिर पड़ता है)

शंख—और दूसरी दुहाई दूँ ?

शशि—(उठते हुए) ठहर अभी !

शंख—(भागते हुए) अब ठहर कहां की । यः पलायति······
　　　　　　　　　　　　(शंख के पीछे शशि भी दौड़ता जाता है)

(गालव का प्रवेश)

गालव—अभी तो यहीं शोर मचा रहे थे कहाँ चले गये, कौन
　　जाने ? इन बालकों के पीछे मेरी धर्म-क्रियायें भी अच्छी
　　तरह नहीं हो पातीं । किन्तु किया क्या जाय ? हम
　　संन्यासियों को भावी सुयोग्य नागरिक भी तो निर्माण
　　करने पड़ते हैं, जिससे गृहस्थाश्रम की पुष्टि और उससे
　　चारों आश्रमों की रक्षा हो ।

(शंख गालव की पीठ की ओर से दौड़ता आता है और ठोकर खाकर गिरता है)

शंख—(गिरते ही) साष्टांग दण्डवत् गुरुजी !

शशि—(दौड़ता आता है और ठिठक कर) प्रणाम गुरुजी !

गालव—अरे क्या कर रहे थे ?

शंख—(उठते हुए) छिया छी ।

गालव—यह खेलने का समय है ? छिया छी !

शंख—सच्ची बात कह दी तो भी आप नाराज़ होते हैं ।

गालव—बड़े सत्यवादी ! (शशि से) बेटा शशि, आज अमरावती को चलना है । इन्द्र ने आमन्त्रित किया है ।

शशि—इन्द्रदेव ने ? क्यों भला गुरुजी ?

शंख—चलो इन्द्र के अखाड़े में ज़रा मज़ा आवेगा ।

गालव—उसी चित्रसेन के सम्बन्ध में, वह अपने प्राण बचाने के लिए सहायता माँगने इन्द्र के पास गया था ।

शशि—फिर उन्होंने अपने सेवक गन्धर्व से क्या कहा ?

गालव—कहा क्या ? 'तेरा अपराध है, मैं नहीं कुछ करता' और मुझे आमन्त्रित किया है । चलने की तैयारी करो ।

(गालव जाते हैं)

शंख—क्यों जी, वहां क्या होगा ?

शशि—कायरता का नाटक, चापलूसी का प्रदर्शन और झूठी भक्ति का प्रहसन ।

शंख—अर्थात् ?

शशि—अर्थात्, इन्द्र किसी प्रकार गुरुजी को समझावेगा कि गन्धर्व के अपराध से वह बहुत दुखित है, वह उससे

घृणा करता है; यदि श्रीकृष्ण ने प्रण नहीं किया होता तो वह स्वयं उसको दण्ड देता; अब से वह सब गन्धर्वों को आज्ञा दे देवेगा कि कभी भी गालव ऋषि के आश्रम के आस पास जल में, स्थल में, या वायु में विचरण न करें ऋषिवर का और उसका जो सम्बन्ध है वह बहुत दृढ़ है, वह तो उनका भक्त दास है। इत्यादि इत्यादि।

शंख—ऐसा क्यों ?

शशि—इसलिए कि ऋषि में तपो-बल है। वह उनकी प्रीति सम्पादन करने से आनन्द में रहेगा। अच्छा चलो अब।

(दोनों जाते हैं)

सप्तम दृश्य।

स्थान—सुभद्रा का महल।

सुभद्रा—गुरुदेव! पितृभवन में सिखलाई हुई नाट्यकला मेरी सहायता करे। इस सुभद्रा की आज परीक्षा है। देखती हूँ क्या होता है ? चित्रसेन के प्राण बचाने का वचन मैं दे चुकी हूँ और पाण्डवों ने उसे सहायता देना अस्वीकार कर दिया है। क्या पार्थ मेरा कहना मानेंगे, भैया कृष्ण के विरुद्ध लड़ने को प्रस्तुत होंगे ? इसका उत्तर देगी मेरी चतुराई। हां, आँखो, हृदय, अंगो, वाणी, केश, वस्त्रो! रूठो, इतने रूठो कि पार्थ को झुकना पड़े। वे बार बार अपने

को मेरा दास कहा करते थे; मेरे सामने संसार को तुच्छ बताया करते थे। आज मालूम हो जावेगा—वे सत्य कहते थे या मुझे प्रसन्न करने को। एक समय अमावस्या की रात्रि को वे मुझे दूसरे कमरे में से यह कह कर बुला लाये कि चल तुझे चन्द्र-दर्शन कराऊँ। मैं आश्चर्य में आ गई कि आज चन्द्र कहाँ से आया। पर वाह री खूबी, दीपकों की ऐसी व्यवस्था रखी थी कि शीशमहल में पहुँचते ही केवल मेरे मुख पर ही प्रकाश पड़ा। सामने की खिड़की में मेरा मुख चमक उठा, वहाँ उन्होंने एक बड़ा दर्पण लगा दिया था। एक क्षण के लिए मैंने भी सोचा कि सत्य ही चन्द्रोदय हुआ है। उसी दिन अपनी सुन्दरता पर मुझे गर्व हुआ था। पर पार्थ, आज तुम छले जाओगे किन्तु मेरा उद्देश्य पवित्र है और मुझे विश्वास है कि आपकी प्रीति मुझे सफलता देगी। मेरे गुरुदेव मुझे आशीर्वाद दें।

(अर्जुन का प्रवेश)

अर्जुन—(स्वगत) जब जब मैं सुभद्रा के महल में आता हूँ वह पंचरति से मेरा स्वागत करती है, किन्तु आज प्रसन्न-बदना अभी तक मेरे सन्मुख नहीं आई। मालूम होता है उद्यान-विहार की वार्ता उसे ज्ञात होगई है। अब तो मनाना ही पड़ेगा। (कुछ आगे बढ़ने पर सुभद्रा को देख) भद्रे, कुशल तो है? आज यह उदासीनता कैसी?

सुभद्रा—महाराज, आप सकुशल हैं तो मैं सकुशल हूँ; यह सारा संसार सकुशल है। आप पूछते हैं, यह उदासीनता कैसी? तो यह मेरा भाग्य। आप जान कर क्या करेंगे?

अर्जुन—मैं उसे दूर करने का उपाय करूँगा ।

सुभद्रा—आप ?

अर्जुन—प्रिये, आज तुम इस प्रकार क्यों बोलती हो ? क्या कभी पार्थ ने तुम्हारा दुख दूर करने में कुछ उठा रक्खा है ?

सुभद्रा—नहीं, यह मैं मानती हूँ किन्तु—

अर्जुन—किन्तु क्या, कहो न ? तुम्हारा रुकना मुझे पीड़ा पहुँचाता है ।

सुभद्रा—पहुँचाता होगा ।

अर्जुन—तुम्हीं देखो ।

सुभद्रा—मैं देखती हूँ, इसी लिए तो चुप हूँ । कार्य कठिन है । मैं आप को अधिक पीड़ा नहीं देना चाहती । मैं ही भुगतूँगी ।

अर्जुन—कठिन ? पार्थ के लिए कठिन ? असम्भव है सुभद्रे, तुम क्या कहती हो ? और उसे तुम भुगतोगी, मेरे रहते ? यह हो नहीं सकता । तुम कहो, शीघ्र कहो भीष्मपितामह के बाण भी इतना कष्ट नहीं दे सके थे जितने तुम्हारे ये वाक्य । वह कार्य मेरे गाण्डीव से भी कठिन है ? क्या महाभारत के विजयी की भुजा से कठिन है ?

सुभद्रा—हाँ, महाराज ।

अर्जुन—तो कहो, वीरों को कठिनाई का मुक़ाबला करने में ही आनन्द आता है, उसी में उनकी कीर्ति है । तुम कहो, मैं प्रण करता हूँ, तुम्हारा कार्य पूर्ण करूँगा ।

सुभद्रा—प्रण न कीजिये, आप पछतावेंगे ।

अर्जुन—मैं कर चुका, प्रण करके पश्चात्ताप करना अर्जुन का काम नहीं है, कहो ।

सुभद्रा—मैंने चित्रसेन की प्राण-रक्षा का वचन दिया है, यहीं कार्य है ।

अर्जुन—उफ् ! सुभद्रा मुझे सँभाल ; यह विश्व जड़ से हिलता मालूम होता है ।

(सुभद्रा आगे बढ़ अर्जुन की भुजा पकड़ उन्हें सहारा देती है ।)

सुभद्रा—महाराज, क्या हुआ ?

अर्जुन—सर्वनाश, और क्या हो सकता है सु ···!

सुभद्रा—यदि मेरे नष्ट हो जाने से सर्वनाश बच सकता है तो मैं तैयार हूँ ।

अर्जुन— कृष्ण उसे मारने का प्रण कर चुके हैं ।

सुभद्रा—मैं जानती हूँ ।

अर्जुन—मैं कृष्ण के विरुद्ध लड़ूं यह कैसे होगा ।

सुभद्रा—इसी लिए तो मैं कहना नहीं चाहती थी । कार्य कठिन था । महाभारत में विजय पाना सरल है किन्तु हृदय पर विजय पाना अत्यन्त कठिन । कृष्ण आप के मित्र हैं और फिर अद्वितीय वीर !

अर्जुन— एक वीर दूसरे वीर से नहीं डरता । किन्तु, कृष्ण ! मैं कृष्ण से कैसे लड़ूंगा ।

सुभद्रा—ठीक है, न लड़िये । संसार को गहरी मित्रता का एव उदाहरण मिल जावेगा, जिसके सामने क्षत्रिय के प्रण को भी झुकना पड़ा ।

अर्जुन—नहीं, क्षत्रिय का प्रण रहेगा, मित्रता नहीं। परन्तु दादा युधिष्ठिर की आज्ञा नहीं है।

सुभद्रा—मैं जानती हूँ कि आज्ञा नहीं है। किन्तु यह मैंने आज ही जाना कि धर्म-कार्य के लिए भी आज्ञा की आवश्यकता पड़ती है। आप भाई की आज्ञा मान अन्याय की ओर से आँख मींच घर में बैठिये और यह सुभद्रा उसी अन्याय का विरोध करने के लिए अपने भाई से लड़ेगी। पर महाराज, कृपा कर अपने शस्त्र मुझे दीजिये, जिससे रणस्थल में मैं वीर-पत्नी के नाम को सार्थक कर सकूं।

अर्जुन—नहीं, यह गाण्डीव अर्जुन के हाथ ही में रहेगा। अपना प्रण पूरा करूँगा। मैं शपथ खाकर कहता हूँ।

सुभद्रा—किस की ?

अर्जुन—तुम्हारी।

सुभद्रा—यह देह तो नाशवान् है।

अर्जुन—तुम्हारे मन की।

सुभद्रा—वह चंचल है।

अर्जुन—तुम्हारे हृदय की।

सुभद्रा—यह निर्बल है।

अर्जुन—तुम्हारे प्रेम और इस गाण्डीव की।

सुभद्रा—जब तक वे आपके पास हैं ?

अर्जुन—है शपथ भक्ति धार्मिक की, परमेश के उत्कर्ष की।
है शपथ लौकिक सृष्टि की, इस भव्य भारतवर्ष की ॥

है आर्य-गौरव की शपथ, सद्ज्ञान की, वेदान्त की ।
है फलाशा-रहित परहित-कर्म के सिद्धान्त की ॥
बाधक न होगी मित्रता गन्धर्व के अब त्राण की ।
प्रण पूर्ण करने में नहीं, चिन्ता मुझे अब प्राण की ॥

सुभद्रे, विश्वास रख, चित्रसेन अब अभय रहेगा।

सुभद्रा—महाराज, विश्वास के लिए शपथ की आवश्यकता ही क्या थी ? सच्चे वीरों के दृढ़ संकल्प, गम्भीर वचन और प्रकट कार्य ही काफी होते हैं ।

अर्जुन—ठीक है । निर्बल विकारो, दूर होवो; किन्तु कृष्ण की मित्रता तू रह, पर मेरे कठिन बाणों की करालता में नर्मी न उत्पन्न करना । कृष्ण सर्वश्रेष्ठ हैं उनकी पूजा करता हूँ; कृष्ण मेरे मित्र हैं मैं उन पर प्रीति रखता हूँ; कृष्ण मेरे आश्रित के शत्रु हैं इसलिए मैं उनसे लड़ता हूँ । ऐ हृदय, तू इतना महान् हो कि ये विरोधी भाव भी तुझमें एकसाथ समान स्थान पावें ।

(यवनिका पतन)

तृतीयाङ्क समाप्त ।

चतुर्थांक ।

प्रथम दृश्य ।

स्थान—जङ्गल ।

('दानव-कुल' गाते हुए नारद का प्रवेश)

नारद—युक्ति चल गई, सुभद्रा की विजय हुई । कृष्ण और अर्जुन में युद्ध होगा । अब मालूम होगा माधव !

माधव बोलो क्या कर लोगे ?
दीन हीन असहाय मार कर कौन पुण्य फल लोगे ?
भाई से भाई लड़वाये तौ भी नहीं अघाए,
पापी मारे पुण्य बढ़ाया, अब क्या पाप करोगे ?
दोषी कंस नहीं है यह तो अजी नहीं शिशुपाल,
'मारूँगा',—कैसे मारोगे ? कुछ भी कर न सकोगे ।
दीन दुखी रक्षा में यह नारद दे देगा प्राण,
अत्याचारी, हरि ही हो तो क्या, निश्चय गिरो, गिरोगे ।

अब ज़रा चल कर श्रीकृष्णचन्द्र से मिलूँ और देखूँ कि उनका सुदर्शन उसी प्रकार चमकता है या नहीं । हँ, हँ, कहते थे—"विश्व बचाने आवे उसको, भारी ठोकर खावेगा" किन्तु शायद यह नहीं सोचा कि ठोकर मारने वाले के पाँव में भी कुछ लगा करता है और यदि ठुकराई जाने वाली वस्तु नम्र हुई तो पाँव ही नहीं अन्तःकरण तक में जाकर ठेस लगती है । जिसमें ऐंठ है, बल है, उसे मारने में किसी को विजय-हर्ष हो सकता है, जो इतना दीन होगया है कि उसने अपने अस्तित्व

को संसार के लिए मिटा सा दिया है, उसे मारोगे ? पहले तो प्रश्न यही है कि मार सकोगे या नहीं ? और यदि हाँ; तो क्या सन्तोष मिलेगा ? सब की सदैव ही जय नहीं हुआ करती । यदि ऐसा होता तो निर्बल दिखाई ही नहीं देते । सबलों के अत्याचार और कलह से यह ससार पीड़ित रहता किन्तु ईश्वर ने निर्बल का सहायक दया में उत्पन्न किया है। दया के सामने बल को पिघलना पड़ता है। चलूँ—

'दानव-कुल-निशि-पतंग जय जय' ।

(जाते हैं)

द्वितीय दृश्य ।

स्थान—बलराम की राज-सभा ।

(नेपथ्य में) यादव-कुल-भूषण महाराज की जय हो, पधारिये देव !

(बलराम, श्रीकृष्ण तथा अन्य यादवों का प्रवेश ।
सब यथा-योग्य स्थानों पर बैठते हैं)

बलराम—कृष्ण, आज चित्रसेन का बध होने वाला है। उस कार्य में किसी बाधा की सम्भावना तो हो नहीं सकती, तो भी हमको सेना आदि का पूर्ण प्रबन्ध रखना उचित है। यदि होसके तो उसे यहाँ पकड़वा कर मँगा लेना चाहिये।

कृष्ण—दादा, इतनी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। हमारे विरुद्ध कोई उसकी रक्षा करने के लिए तैयार नहीं होगा

और उसमें इतनी सामर्थ्य नहीं कि वह कुछ गड़बड़ कर सके ।

(प्रवेश नारद का)

'दानव-कुल-निशि-पतंग जय जय' ।

(सब उठ कर प्रणाम करते हैं । नारद आशीर्वाद देते हैं :—

'सत्कार्यों में तुम्हारी विजय हो' ।)

बलराम—पधारिए देव, बड़ी कृपा की, यह सभा पवित्र हुई ।

नारद—कहिये महाराज, राजसभा में कौन सा विचार उपस्थित था ? उसी चित्रसेन-बध का ।

बलराम—जी महाराज ।

नारद—हाँ, अवसर तो विचार-योग्य है, बहुत सोच समझ कर कार्य करना चाहिये, मामला कठिन होरहा है ।

कृष्ण—कठिन ? चित्रसेन का बध कठिन ! न कुछ गन्धर्व, सुदर्शन को आज्ञा देते ही क्षणमात्र में उसका सिर धड़ से अलग हो जावेगा ।

नारद—चित्रसेन का मारना अब टेढ़ी खीर होगई है ।

कृष्ण—क्यों ? टेढ़ी खीर, और मेरे लिए ?

नारद—हाँ, हाँ आपके ही लिए; क्योंकि जिस तरह आपने उसके प्राण-नाश की प्रतिज्ञा की है, उसी तरह कोई वीर उसकी प्राण-रक्षा की भी प्रतिज्ञा कर चुका है ।

बलराम—भगवन्, भूतल पर ऐसा कौन है जो हमारे विरुद्ध प्रतिज्ञा करे ?

नारद—वे ही हैं आपके गाढ़े मित्र ।

बलराम—मेरे गाढ़े मित्र ?

नारद—नहीं, आपके नहीं, गोपाल कृष्ण के।

कृष्ण—मेरे कौन—अर्जुन ?

नारद—हां, हां, अर्जुन जो कृष्ण-सखा कहलाते हैं वे।

बलराम—क्यों गोपाल कृष्ण! उपकार का बदला पाँडवों ने दे दिया न ?

कृष्ण—दादा, अर्जुन को यह बात मालूम न होगी कि चित्रसेन को मारने की प्रतिज्ञा कृष्ण ने की है।

नारद—बस गोपाल कृष्ण रहने दीजिये। उन्हें भलीभांति मालूम होचुका है कि यह आपकी प्रतिज्ञा है और उसीके विरुद्ध उन्होंने बीड़ा उठाया है। इस समय चित्रसेन उनके महलों में सुख की नींद ले रहा होगा। मैंने सुना है वे कहते थे 'कृष्ण क्या यदि कृतांत भी चित्रसेन के प्राण लेने की इच्छा करे तो यह धनुर्धर उसका गर्व गलित करेगा' और उनकी तो समस्त तैयारियां भी हो चुकीं।

बलराम—मुनिराज, नीति के अनुसार आप एक बार उन्हें और सूचना दे दीजिये कि वे इस दुराग्रह को छोड़ कर चित्रसेन को हमारे सामने उपस्थित करें और मित्रता को बनाये रखें; इसी में उनका सौभाग्य है।

नारद—बलभद्र, आपके इस कहने की क्या आवश्यकता है ? आप क्या सोचते हैं कि मैंने अपने योग्य कोई बात उठा रखी होगी ? तो भी, जाकर फिर प्रयत्न करता हूँ। परन्तु, आप रणांगण में सेना सहित उपस्थित हो जाइये। मैं उनका उत्तर कदाचित् वहीं आकर कह दूंगा। मानेंगे

तो ठीक है नहीं तो अपनी हानि ही क्या है? सब उपाय कर रखिये जिससे गोपाल कृष्ण का प्रण विफल न हो। (कृष्ण की ओर देख कर) ये कुछ उदास दीखते हैं।

बलराम—उदास होने की तो कोई बात नहीं। अर्जुन का अभिमान तोड़ने के लिये हम आवश्यकता से भी अधिक हैं।

नारद—ठीक है महाराज। तो अब मैं चलता हूँ।

('दानव-निशि-कुल-पतंग जय जय' गाते हुए प्रस्थान)

(स्वगत) रंग तो चोखा आया है। सत्ता का दुरुपयोग करने से क्या क्या दुर्घटनायें होती हैं यह सब को मालूम हो जावेगा। परन्तु नारद, थोड़ी सी जय में ऐसे कर्तव्य-विमूढ़ क्यों होरहे हो। अर्जुन को कृष्ण के समीप कर देना और बाकी है कि तुम्हारा नाटक प्रारम्भ हुआ।

(जाते हैं)

तृतीय दृश्य।

स्थान—कैलाश।

(शङ्कर की सभा। पार्वती, गणेश, कार्तिक-स्वामी, एक ओर सिंह और दूसरी ओर नन्दी हैं)

शङ्कर—प्रिये, बहुत दिनों से हमारी सभा में भूलोक के सम्बन्ध में कुछ चर्चा नहीं हुई। मेरे गण भी महाभारत में पाये हुए भोजन से अघा गये थे इसलिए उन्होंने भी कुछ उस ओर ध्यान नहीं दिया। किन्तु वे अब कुछ भूखे मालूम होते हैं।

सब गण—हाँ महाराज; अब तो रुण्ड मुण्ड चाहिए। यह जीभ लपलपाती है। (सब जीभ निकालते हैं)

पार्वती—यह वीभत्सता मुझे अच्छी नहीं मालूम होती। आपको विनाश में ही आनन्द आता है किन्तु अनाथों की पुकार, विधवाओं के आँसू, घायलों का कराहना और भू-प्रदेशों की दुर्दशा मुझे विह्वल करती है।

शङ्कर—पार्वती, तू भोली है। विश्वव्यापी परिणाम वाले कार्यों में छोटी मोटी बातों की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। इनकी ओर से तो आँख, कान मीच लेना ही अच्छा है। विनाश ही सृष्टि का कारण होता है। यदि मृत्यु न हो तो इस संसार में ये भिन्नतायें और चहल पहल न रहे; सब जगत जड़ क्रमानुसार अपने अनन्त पथ पर चलता रहे। जीवन निरानन्द हो जावे।

(नारद का प्रवेश)

'दानव-कुल-निशि-पतंग जय जय'।

नारद—महाराज, यह नारद आपको प्रणाम करता है।

शङ्कर—धर्म में दृढ़ रहो वत्स नारद !

पार्वती—वत्स कुशल रह। कैसे आया ?

नारद—माँ, दर्शनार्थ चला आया हूँ।

शङ्कर—नारद, तू तो सब संसार में घूमता फिरता है। कुछ पृथ्वी के हाल चाल ही सुना।

नारद—पृथ्वी में शान्ति विराजती है किन्तु अभी अभी भयङ्कर उत्पातों के कारण भी प्रकट हुए हैं।

शङ्कर—वे क्या ?

नारद—राजमद में आकर श्रेष्ठ राजा भी न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करने में नहीं हिचकते। ऐसी अवस्था में दीन निर्बलों की रक्षा का कोई ठिकाना नहीं रहता।

पार्वती—वत्स, दीन की रक्षा के लिए कैलाश की शक्तियाँ सदैव उपस्थित हैं।

नारद—माँ, सो तो ठीक है, किन्तु जब मामला बड़ों बड़ों का आ पड़ता है तब शक्तियों को भी विचार करने की आवश्यकता होती है।

शङ्कर—हाँ तो पृथ्वी पर कौन सा अवसर आया है ?

नारद—चित्रसेन एक गन्धर्व है।

शङ्कर—मैं उसे जानता हूँ, वह हमारे यहाँ कई बार गाने के लिए आया है।

नारद—उसके मुख का शुष्क पान मुनि गालव की अञ्जलि में गिर पड़ा इसलिए श्रीकृष्ण ने उसे आज सन्ध्या तक मार डालने का प्रण किया है।

पार्वती—और उसे बचाने का किसी ने प्रयत्न नहीं किया ?

नारद—किया है। (भगवान् शङ्कर की ओर इशारा करके) प्यारे भक्त अर्जुन ने।

पार्वती—अर्जुन की विजय हो।

नारद—आशा तो यही है। तो भी, संग्राम श्रीकृष्ण से है; भयङ्कर भयङ्कर शस्त्रास्त्रों का उपयोग होगा। सुनता हूँ अर्जुन पाशुपतास्त्र का प्रयोग करने वाले हैं।

शङ्कर—अवश्य, मैं प्रस्तुत हूँ। देखूँगा श्रीकृष्ण किस प्रकार उस के सामने ठहरते हैं ?

(शङ्कर के तीसरे नेत्र में से अग्नि की चमक निकल कर सब को चौंधिया देती है)

एक गण—माखन मिश्री से बने हुए हाड़ मास उसका आघात नहीं सह सकते।

दूसरा गण—अहाहा ! कृष्ण का रक्त बड़ा मीठा होगा; मेरे तो मुँह में पानी आ गया।

नारद—देव ! आप सत्य कहते हैं किन्तु मुझे एक शङ्का है।

शङ्कर—शङ्का कैसी ?

नारद—यह कि यदि आपको कृष्ण ने मनाया तो आप आशुतोष स्वभावानुसार उनसे प्रसन्न हो उनकी ही सहायता के लिए उद्यत हो जावेंगे।

शङ्कर—नहीं वत्स, यह नहीं होगा। आमन्त्रित होने पर मैं अपने अस्त्र की सफलता के लिए अवश्य उसके प्रयोजक की सहायता करूँगा। तू निश्चिन्त रह।

नारद—तो मैं जाता हूँ क्योंकि पिता जी के दर्शन करने हैं।

'दानव-कुल-निशि-पतंग-जय जय'।

(नारद गमन)

चतुर्थ दृश्य ।

स्थान---ब्रह्मलोक ।

(ब्रह्मदेव कमलासन पर विराजमान हैं, उनकी एक ओर सावित्री और दूसरी ओर मयूर के साथ सरस्वती बैठी हैं ।)

ब्रह्मदेव—बेटी, ब्रह्मलोक की इस अनन्त निस्तब्धता से तेरा जी तो नहीं ऊबता ?

सरस्वती—पिता जी, विश्व के उच्चतम विचार निस्तब्धता में ही उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार महान् कार्यों की नींव भी सङ्कल्प रूप से चुपचाप ही स्थापित होती है । मुझे निस्तब्धता से प्रेम है; विशेषकर इसलिए कि पृथ्वी आदि ग्रहों के वाद-विवाद पूर्ण वातावरण को छोड़ यहाँ आने पर अपूर्व शान्ति मिलती है ।

सावित्री—बेटी, संसार में तेरे नाम पर इतना कलह क्यों है ?

सरस्वती—इसीलिए कि ज्ञान की सच्ची लालसा कम है । पक्षपात स्वार्थ, जातीयता, गर्व आदि के कारण बड़े बड़े विद्वान् भी केवल एकांगी बातें सिद्ध करने में अपनी शक्ति खर्च किया करते हैं और सत्य पर कुठार चलाते हैं ।

सावित्री—कैसे भला ?

सरस्वती—उदाहरणार्थ, किसी देश को जीतने की अथवा उसे सदा अपने अधिकार में बनाये रखने की इच्छा करने वाला राजा विद्वानों को सहायता देता है इसलिये कि वे उस देश में ऐसी शिक्षा फैलावें जिस से वहाँ के

निवासी चरित्रहीन हो जावें, उनकी कार्य-प्रणालियों और व्यवस्थाओं को हानिकारक और तुच्छ सिद्ध करें, उनके इतिहास को तोड़ मरोड़ कर गौरवहीन बना दें और उनमें फूट डाल दें।

सावित्री—वे विद्वान् होकर भी क्यों इस प्रकार के नीच कार्य करते हैं।

सरस्वती—वे विद्वान् अवश्य हैं किन्तु हैं तो मनुष्य—क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, मद, मत्सर आदि विकारों से भरे हुए। इस सुवर्ण ने संसार में बड़े बड़े उत्पात मचा रखे हैं। इसकी चमक से सब की आंखें चौंधिया जाती हैं और वे सत्यता को देखकर भी नहीं देखते।

सावित्री—क्या विद्वान् इन विकारों से नहीं बच सकते ?

सरस्वती—बच सकते हैं किन्तु बचना उनकी आत्मिक उन्नति पर अवलम्बित है, धार्मिक शिक्षा पर निर्भर है। बिना धार्मिक शिक्षा के चरित्र-बल नहीं प्राप्त हो सकता और चरित्र-बल के अभाव में बड़े से बड़ा विद्वान् भी इन विकारों का बलि हो जाता है।

(नारद का प्रवेश)

नारद—तात के पूज्य चरणों में नारद प्रणाम करता है। माता जी को प्रणाम।

ब्रह्मदेव—ईश्वर में तुम्हारी भक्ति दृढ़ रहे।

सावित्री—बेटा, सदा सत्कार्य किया करो।

सरस्वती—और भैया मेरा आशीर्वाद है कि सदैव कलह मचाया करो।

नारद—हां बहिन, तू ऐसा कहेगी ही, क्योंकि तू विवाद-प्रिय है न।

ब्रह्मदेव—नारद तू बड़ा नटखटी हो गया है। संसार में यह क्या झगड़ा मचा रखा है?

सावित्री—कौन सा?

ब्रह्मदेव—वही कृष्णार्जुन वाला जिसके कारण आज मुझे कुछ चिन्ता हो रही है।

सरस्वती—भैया ने तो कार्य ठीक किया है।

सावित्री—क्यों नहीं, कवियों की स्फूर्ति के लिये एक विषय मिल गया।

सरस्वती—पर मैं तो इसे न्याय के सिद्धान्त पर ठीक बताती हूँ।

ब्रह्मदेव—तुम्हें सिद्धान्त की पड़ी है और मुझे सृष्टि के अन्त की। प्रलय हुआ चाहता है—प्रलय। युद्ध रुकना चाहिये।

सरस्वती—सिद्धान्त की जय हो, चाहे सृष्टि का अन्त ही क्यों न हो जावे।

नारद—सत्ताधीशों को शिक्षा मिल गई—इसी में हमारे सिद्धांत की विजय है। कृष्ण भी मन में सोचते होंगे कहां से यह आफ़त आ पड़ी।

सरस्वती—अत्याधिक भक्ति और आदर-भाव भी कभी कभी बड़े अनर्थ कराते हैं। ये पक्षपात को उपजा कर मनुष्य को न्याय-मार्ग से हटा देते हैं। गालव ब्राह्मण हैं और श्रीकृष्ण ब्राह्मण-भक्त, फिर भला वे ब्राह्मण के अपराधी

को क्यों न दण्ड देते और दण्ड भी सब से बड़ा—मृत्यु । भैया, तुमने अच्छा ही किया जो इन भक्ति के अंधों की आँख का परदा उठाया ।

ब्रह्मदेव—मैं गालव ऋषि के पास जाता हूँ उनसे चित्रसेन को क्षमा कराके यह झगड़ा मिटाता हूँ ।

(उत्थान)

पंचम दृश्य ।

स्थान—गालव ऋषि का आश्रम ।

(गालव का प्रवेश)

गालव—अरे शंख, ओ शंख, बेटा शशी, आज दोनों न जाने कहाँ चले गये ! शंख ('जी महाराज आया' कहता हुआ शंख दौड़ता आता है) अरे कहाँ चला गया था ? मैं कब से पुकार रहा हूँ शंख, (शंख—जी महाराज) शंख, (शंख—जी महाराज) शंख, (शंख—जी महाराज) पर सुनता कौन है ? (शंख—मैं) मेरा तो गला बैठ गया ।

शंख—(स्वगत) चलो अच्छा हुआ, बूढ़ा भी था । अब शाप के शब्द साफ साफ नहीं निकलेंगे और न किसी की जान जावेगी ।

गालव—उधर मुंह किये क्यों खड़ा है, मेरी ओर देख ।

शंख—(स्वगत) ऐसे ही खूबसूरत हो ।

गालव—अभी तक कहाँ था ?

शंख—महाराज, शशी जी शशी जी........ ।

गालव—अरे शशी जी शशी जी क्या ?

शंख—शशी जी क्या—व्याख्या—आक् छीं, व्याख्यान दे रहे थे।

गालव—व्याख्यान काहे का ?

शंख—बड़ा ही अच्छा था—विद्यार्थि-धर्म का। उन्होंने यह भी कहा था कि किसी पर क्रोध नहीं करना।

गालव—अरे तुझ से यह कौन पूछता है ? कहाँ है शशी ?

शंख—(स्वगत) हे भगवन् शशि को भेज। (शशि का प्रवेश) (उंगली दिखाकर, प्रकट) वे आये।

गालव—अरे शशि, पूजा का समय हो गया न ?

शशि—गुरुदेव, देवगृह में सब सामग्री सजा आया हूँ।

गालव—अच्छा तुम यहीं रहो मैं पूजा करके आता हूँ।

(गालव जाते हैं)

शंख—चलो भले बचे। पहले तो मैं समझता था कि मेरी ही पूजा होगी अब देवता पूजे जांयगे।

शशि—क्या हुआ ?

शंख—क्या हुआ ? आप तो बच जाते हैं हाथ पाँव जोड़ कर, आफत आती है तो हमारी। तुम सरीखों ही ने गुरुजी की आदत बिगाड़ रखी है, तुम्हारे नम्रता दिखाने से उन्हें क्रोध दिखाकर डराने की लत लग गई है। ज़रा ऐंठ जाया करो तो गुरु जी भी झुक जावें। तुम व्याख्यान में कहते हो क्रोध मत करो और सिखाते हो क्रोध करना।

शशि—आखिर हुआ क्या ?

शंख—तुम्हारा सिर, यदि पहले मैं न आ जाता तो मालूम होता। पहला हमला मुझे ही सहना पड़ा।

शशि—ख़ैर, आज गुरु महाराज कुछ उद्विग्न हैं।

शंख—मुझे तो उद्विग्न होना, क्रुद्ध होना, उनका नैसर्गिक स्वत्व मालूम होता है।

शशि—होगा, किन्तु आज कुछ विशेषता है।

शंख—क्यों भला ?

शशि—आज प्रातःकाल सूर्य के लिये अञ्जलि भर कर गुरु जी आंख मीचे जप कर रहे थे कि इतने में पास ही चरने वाले मृगछौने ने—गुरु जी कुछ दे रहे हैं यह सोच, बढ़ कर अञ्जलि का जल पी लिया। उसके स्पर्श से गुरु जी का ध्यान टूटा।

शंख—झट से दुष्ट, पापी, नीच इत्यादि से श्रीगणेश करके उन्होंने शाप दिया होगा।

शशि—नहीं, शाप नहीं दिया, वे केवल मुसकरा दिये।

शंख—पत्थर में फूल खिले।

शशि—और बोले—पागल तूने मेरी अञ्जलि अपवित्र कर दी। मैंने कहा—यह निरा अबोध है जैसे कि चित्रसेन।

शंख—तब ?

शशि—सुनते ही गुरु जी उदास हो गये।

शंख—फिर ?

शशि—गुरु जी ने दूसरी अञ्जलि भर कर अर्घ्य तो दिया ही किन्तु वह प्रसन्नता नहीं थी।

(आकाश-मार्ग से एकाएक ब्रह्मदेव जी का अवतरण)

शंख—(स्वगत) अरे यह कहाँ से टपक पड़े।

शशि—भगवन्! प्रणाम।

शंख—प्रणाम।

ब्रह्मदेव—प्रसन्न रहो। ऋषिवर कहाँ हैं?

शंख—पूजा कर रहे हैं पूजा।

शशि—मैं आसन लाता हूँ।

(बाहर जाता है)

शंख—(स्वगत) वाह रे ब्रह्मा, तुझे धन्य। कैसी सूरत गढ़ी है। (प्रकट) भगवन् आपका आगमन कहाँ से?

ब्रह्मदेव—ब्रह्मलोक से।

शंख—एं, यह कोई भूत तो नहीं। वहाँ तो मर के ही कोई जा सकता है। गायत्री का पाठ करूँ अभी लोप हो जावेगा।

(ओम् तत्सवितुर········पाठ करता है)

(शशि आसन लेकर आता है)

शशि—(आसन रखकर) महाराज विराजिये।

(ब्रह्मदेव आसन पर बैठते हैं, शशि और शंख भी नीचे बैठते हैं।)

शशि—(शंख से) यह क्या कर रहे हो?

शंख—चुप रहो, गायत्री पढ़ रहा हूँ। ओम् तत्सवितुर········

शशि—क्यों भला?

शंख—यह ब्रह्मलोक से आया है और सूरत तो देखो कैसी भूत सरीखी है। ओम् तत्सवितुर..........

ब्रह्मदेव—ऋषिवर प्रसन्न तो हैं ?

शशि—जी हां, ईश्वर की दया से सब कुशल है।

शंख—प्रसन्न तो नहीं पर सुन्न हैं सुन्न।

ब्रह्मदेव—सो क्यों ?

शशि—चित्रसेन गंधर्व पर अपराध न रहते हुये भी गुरु जी ने क्रोध किया था इसलिये उसका पश्चात्ताप है।

ब्रह्मदेव—(स्वगत) चलो मेरा कार्य आधा तो बन गया।

(गालव का प्रवेश)

गालव—बेटा शशि, आज पूजा से सन्तोष नहीं हुआ।

(ब्रह्मदेव की ओर देख कर और चकित होकर शीघ्रता से)

भगवन्, नमोनारायण।

ब्रह्म० (उठकर) नमो नारायण। आपका तप सफल हो।

गालव—भगवन्, कैसे कष्ट किया ? मेरी कुटी आज पवित्र हुई।

शंख—(स्वगत) अरे यह तो कोई बड़े निकले।

ब्रह्म०—आपको कष्ट देने आया हूँ। सृष्टि का संहार हुआ चाहता है, बचाइये।

गालव—(आश्चर्य से) कैसे ?

ब्रह्म०—चित्रसेन की रक्षा के लिये अर्जुन ने प्रण किया है और उसकी सहायता करने स्वयं भूत-भावन भगवान् शङ्कर आ रहे हैं; सर्वनाश हो जावेगा।

शंख—(स्वगत) मज़ा आवेगा ।

गालव—हर, हर, महा अनर्थ हुआ । मैं अब अनुभव करता हूँ कि वह गंधर्व निरपराध है । मुझे अपने क्रोध पर दुख है ।

शंख—(स्वगत) चलो, देवता ठिकाने आये ।

ब्रह्म—तो भगवन् रणांगण पर—

शंख—(स्वगत) अरे ब्राह्मण है ।

ब्रह्म०—चलकर उसे क्षमा कीजिये जिससे युद्ध रुके ।

गालव—अवश्य चलिये । (दोनों जाते हैं)

शंख—भगवन् शशि, आप भी चलिये ।

शशि—आज मुझे बहुत हर्ष होता है कि एक निर्दोष के प्राण बचे ।

शंख—मुझे इस बात का हर्ष है कि गुरु जी अब क्रोध की मात्रा कम कर देंगे जिससे मेरे प्राण बचेंगे ।

(जाते हैं)

षष्ठ दृश्य ।

स्थान—युद्धस्थल ।

(एक ओर से रथ पर बैठे हुए अर्जुन का कुछ सैनिकों सहित प्रवेश)

अर्जुन—(रथ से उतर कर—स्वगत) कैसी विकट घटना और योगायोग ! जिसकी भक्ति मैं सदा करता रहा, जिन्हें परमाराध्य समझता रहा, हा ! आज उन्हीं के विरुद्ध प्रतिज्ञा और युद्ध ! (कुछ देर ठहर कर) किन्तु, यह युद्ध

है न्याय के लिए और एक आश्रित की प्राण-रक्षा के लिए, लड़ूँगा ।

(दूसरी ओर से रथ पर बैठे हुए श्रीकृष्ण का कुछ सैनिकों सहित प्रवेश)

श्रीकृष्ण—(स्वगत) जिसे प्यार किया, उपदेश दिया, उसी से लड़ने का समय आया । (सोच कर) क्या पार्थ प्रण बदल सकेगा ? नहीं, कदापि सम्भव नहीं । अभी भी उसे गीता की गाथा याद होगी, कर्मयोग का रहस्य स्मरण होगा । तो फिर युद्ध (कुछ ठहर कर) होने दो । सखा पार्थ से हारने में मैं गौरव समझूंगा ।

अर्जुन—(श्रीकृष्ण को देखकर) कौन ? श्रीकृष्ण !

श्रीकृष्ण—हाँ पार्थ ।

(दोनों दौड़कर गले मिलते हैं । इतने में नारद प्रवेश करते हैं)

नारद—नारायण ! (नारद आश्चर्य भरी मुद्रासे देखते हैं) 'नारायण' सुनते ही श्रीकृष्ण और अर्जुन एक दूसरे से अलग हो जाते हैं ।)

अर्जुन—(नारद से) भगवन्, भारत-युद्ध के पश्चात् आज फिर कठिन प्रसंग आया है ।

श्रीकृष्ण—पर इसके लिए इतना असमंजस क्यों ?

नारद—हाँ, तो बस होने दो । क्या गांडीव और सुदर्शन एक दूसरे से कम हैं ?

अर्जुन—देवर्षि, चाहे गांडीव और सुदर्शन में समता न हो, पर पार्थ का प्रण भगवान् के प्रण से कम दृढ़ नहीं है ।

श्रीकृष्ण—(स्वगत) मुझे इस बात का गर्व है । (प्रकट) पार्थ हम मित्र हृदय रखते हुए भी अपने प्रणों के समान

कठिन शस्त्रों को शत्रुभाव धारण करावें और गीता-रहस्य को झंकार से जगतीतल गुञ्जार दें।

नारद—(जाते हुए—स्वगत) और यह भी घोषित कर दें कि बड़ी से बड़ी शक्ति की स्वेच्छाचारिता को रोकने की सामर्थ्य निर्बलों में भी उत्पन्न हो सकती है। चलूं, युद्ध में मुझ संन्यासी का क्या काम ? (नारद गमन)

अर्जुन—ठीक है, आओ।

(युद्ध प्रारम्भ होता है और कुछ देर बाद अर्जुन घायल होकर गिरता है। श्रीकृष्ण झट से उसके पास जाते हैं और उसे अपनी गोद में रखते हैं।)

श्रीकृष्ण—(स्वगत) उफ ! मेरे इन दुष्ट हाथों ने क्या किया ? मैंने स्वयं अपना ही हृदय घायल किया। पार्थ, उठो, भैया, मैं कृष्ण हूँ—तुम्हारा ही कृष्ण हूँ। जिसने तुम पर प्रहार किया था वह कृष्ण पश्चात्ताप के आँसुओं से स्नान कर तुम्हारा कृष्ण कहलाने योग्य पुनीत हुआ है। किन्तु (आँसू पोंछते हुए) ऐ आँसुओ, अब न बहो। कहीं प्यारे पार्थ के घाव पर गिर पड़ोगे तो उसे कष्ट होगा।

अर्जुन—(आँख मीचते हुए) कृष्ण सँभालो······भीष्म के बाण, तोड़ो भाई—अपना प्रण।

श्रीकृष्ण—(स्वगत) इसे महाभारत की याद आई है। भीष्म पितामह के विकराल बाणों से आहत होकर यह मूर्छित हुआ था वह अवस्था मैं सह नहीं सका, मैंने चक्र उठा कर भीष्म पर आक्रमण किया। हाय रे समय के फेर ! कौन कह सकता था कि यही कृष्ण स्वयं अर्जुन से युद्ध

करेगा, उसे मूर्छित करेगा । उफ् ! क्या प्रण इस समय भी पूर्ण करने योग्य रहा है ? (कृष्ण अर्जुन पर हवा करते हैं।)

अर्जुन—(होश में आकर और इधर उधर देख कर) मैं कहाँ हूँ ?

श्रीकृष्ण—कृष्ण की गोद में ।

अर्जुन—कृष्ण की ?

श्रीकृष्ण—हां ।

अर्जुन—(श्रीकृष्ण को देखकर) खेद है, मैं अपने को कृष्ण की गोद में अधिक देर तक नहीं रख सकता । क्षमा कीजिये, यह युद्धस्थल है और आप मेरे शत्रु हैं ।

श्रीकृष्ण—ठीक है ।   (दोनों खड़े होते हैं ।)

अर्जुन—सँभलो, मैं पाशुपतास्त्र का प्रयोग करता हूँ ।

(तरकश से बाण निकलता है । आकाश से शङ्कर का अवतरण)

श्रीकृष्ण—भगवन् , प्रणाम ।

अर्जुन—देव, प्रणाम ।

शङ्कर—अर्जुन, विजयी होओ । (श्रीकृष्ण से) कृष्ण, देखते हो मैं आ गया हूँ । ठीक हो कि हार मान कर चले जाओ ।

श्रीकृष्ण—भगवन्, रण से विमुख होने की शिक्षा आपके मुख से शोभा नहीं देती ।

शङ्कर—तुमने एक निरपराधी को मारने का प्रण करके अत्याचार किया है । अत्याचारी कायर हुआ करता है, इसलिए मैंने कहा था अपने प्राण बचाओ ।

श्रीकृष्ण—मैं यहाँ अपने किये का फैसला सुनने नहीं आया हूँ। मैं कायर हूँ या नहीं, इसे तो युद्ध दिखा देगा।

शंकर—ठीक है। चढ़ाओ अर्जुन अपना बाण।

(ब्रह्मदेव, गालव, शशि और शंख का प्रवेश)

ब्रह्मदेव—क्षमा कीजिये भगवन्। अशुतोष शान्त होइये।

(सब चकित हो उधर देखते हैं और एक दूसरे को प्रणाम करते हैं)

गालव—इतने भयङ्कर रक्तपात की आवश्यकता नहीं। मुझे खेद है कि मेरे ही कारण यह प्रचण्ड काण्ड उपस्थित हुआ। मैं चित्रसेन को क्षमा करता हूँ। युद्ध बन्द हो।

(कृष्ण और अर्जुन एक दूसरे के गले मिलते हैं)

(नारद, चित्रसेन और उसकी पत्नी का प्रवेश)

नारद—नारायण। (आश्चर्य मुद्रा से देखते हैं)

अर्जुन—चित्रसेन, मुनिराज ने तुझे क्षमा कर दिया।

(चित्रसेन और उसकी पत्नी गालव मुनि के चरणों में प्रणाम करते हैं)

चित्रसेन—महाराज, मुझ से जो अपराध हुआ है उसके लिये मुझे अत्यन्त पश्चात्ताप है।

नारद—(स्वगत) ठीक है। अपने अपने कार्य के लिये सब को पश्चात्ताप है तो मेरा भी नाटक समाप्त है।

शंख—(चित्रसेन) देखो जी, अब से मुँह सँभाल कर थूकना।

चित्रसेन—तुम कौन हो भाई ?

शंख—देखो, एक बार कह दिया न, मुँह फेर कर बात करो, हम पर थूक उड़ेगा। गुरू जी से कह दूंगा, अब की बार शाप दिया तो बचा बचोगे नहीं।

शशि—उस बेचारे को न सताओ।

नारद—गोपालकृष्ण ! क्या हाल है ?

श्रीकृष्ण—महाराज, आप कृपा रखिये। हम शक्तिवान होकर भी आप के हाथ के खिलौने हैं !

(प्रवेश—एक ओर से सुभद्रा, द्रौपदी, भीम, नकुल, सहदेव और दूसरी ओर से बलराम का। सब उधर देखते हैं।)

श्रीकृष्ण—(बलराम से) दादा, मामला तय हो गया। ऋषिवर ने चित्रसेन को क्षमा कर दिया।

बलराम—ठीक है, नहीं तो मैं सारी सेना ले आया हूँ।

द्रौपदी—चलो आपत्ति टली।

ब्रह्मदेव—यह अवसर अत्यन्त शुभ है। भगवान् श्रीकृष्ण भी उपस्थित हैं। आओ, हम सब आराधना करें और पुरानी बातें भूलें।

(सब दो क़तारों में खड़े होते हैं। बीच में श्रीकृष्ण रहते हैं।)

गायन।

सब—
देव, हम सब हैं तेरे दास।

पुरुषदल—
भक्तों की जो भक्ति अचल है,

नारद—
सेवक की आशक्ति अटल है,

स्त्रीदल—
अबला दल में बल अविचल है,

सब—
तेरा प्रकट प्रकाश ॥ देव, हम सब० ॥

पुरुषदल—

धन्य प्रतापी प्रण पर अड़ते,

नारद—

अन्यायों से सदा झगड़ते,

स्त्रीदल—

निर्बल होकर भी न पिछड़ते,

सब—

रहता उनके पास ॥ देव, हम सब० ॥

पुरुषदल—

तुझमें दृढ़ विश्वास किये हैं,

नारद—

है विरोध पर, विनय लिये हैं,

स्त्रीदल—

तव सेवा में हृदय दिये हैं,

सब—

हो न कहीं उपहास ॥ देव, हम सब० ॥

पुरुषदल—

छलछन्दों से हम स्वतन्त्र हों,

नारद—

पर-सेवा ही परम मन्त्र हो,

स्त्रीदल—

विश्व-भलाई सिद्ध यन्त्र हो,

श्रीकृष्ण—

हो पूरी सब आस ।

सब—

देव, हम हैं सब तेरे दास ॥

अन्तिम पटाक्षेप ।

समाप्त